डर के आगे जीत है

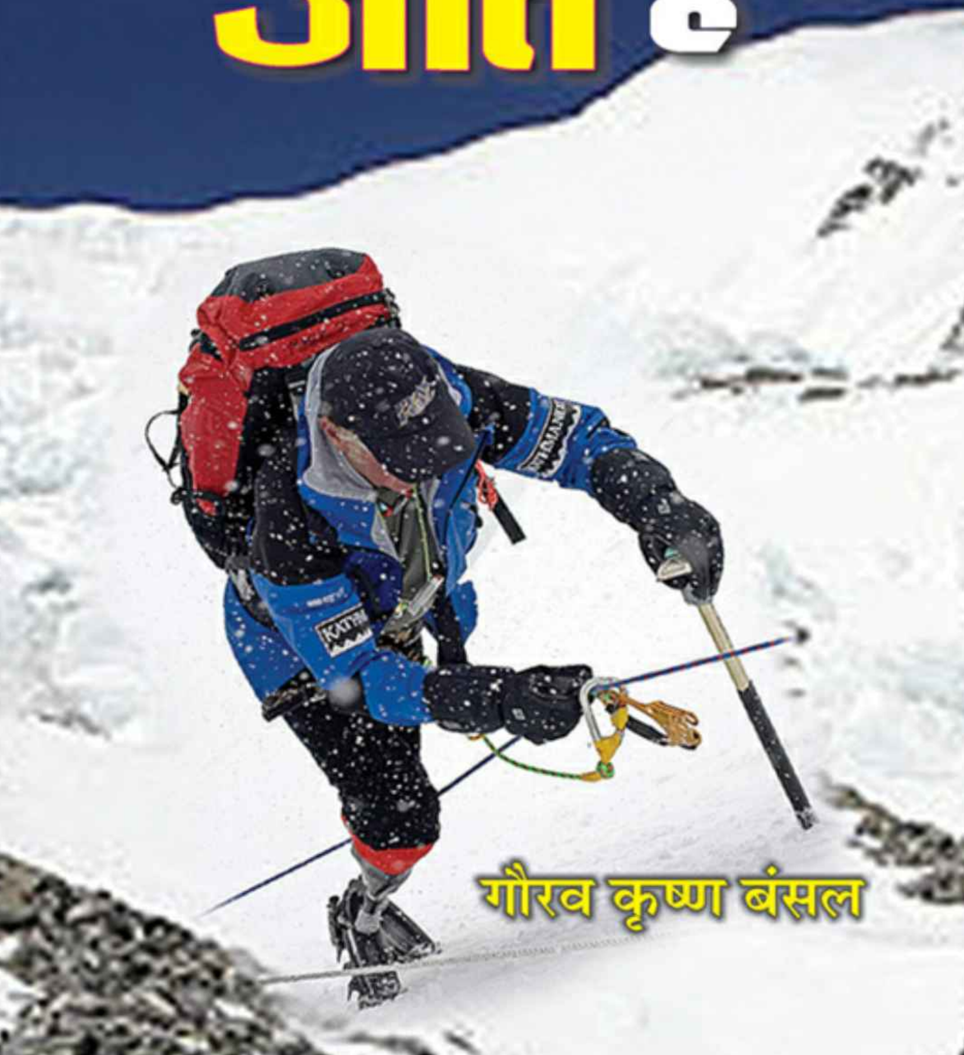

गौरव कृष्ण बंसल

डर के आगे जीत है

गौरव कृष्ण बंसल

ज्ञान गंगा, दिल्ली

अनुक्रमणिका

आभार

प्रस्तावना

1. जीतना : बाधाओं के बावजूद
2. हम होंगे कामयाब
3. राष्ट्रों की सफलता की कहानियाँ—डर के आगे जीत है!
4. व्यक्तियों की सफलता की कहानी
5. कुरूप बतख

आभार

मैं उन सब विद्यार्थियों को धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने मुझे यह पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया है। मैं लखनऊ के विद्यार्थियों को प्रेरणादायक भाषण देता रहा हूँ। मैंने पाया कि जिन विद्यार्थियों को मैं संभाषित करता था, वे बड़े ही ग्राही थे और प्रासंगिक तथा चुनौतीपूर्ण प्रश्न पूछते थे। उनसे जो मुझे फीडबैक मिला, उससे मुझे विश्वास हो गया कि किसी व्यक्ति की सफलता के लिए शिक्षा के साथ-साथ मार्गदर्शन और प्रेरणा बहुत जरूरी है। इस बात को समझने के बाद मेरा मन 'डर के आगे जीत है' लिखने को प्रेरित हुआ।

लिखना बहुत समय लेनेवाला काम है। मेरा अधिक-से-अधिक समय सरकारी काम और जिम्मेदारियाँ ले लेती हैं। जो समय बचता है, वह मेरे परिवार का है, विशेषकर मेरी पत्नी और मेरी पुत्री के लिए। मैं इस बात को मानता हूँ कि इस पुस्तक को लिखने के लिए समय मैंने उनके हिस्से के समय में से निकाला है। इस विलासिता के लिए मैं उन दोनों का, और खासकर अपनी पत्नी का, जीवन भर आभारी रहूँगा, जिसने मुझे तब भी खाना खिलाया जब मैंने उन्हें छुट्टी पर बाहर ले जाने से इनकार कर दिया और इसके बजाय मैं अपने लेखन में व्यस्त रहा।

आज मैं जो भी हूँ, वह अपने माता-पिता के अथक प्रयासों के फलस्वरूप हूँ। उन्होंने हमेशा मुझे अपने साहित्यिक प्रयासों के लिए प्रेरित किया, अच्छी-से-अच्छी शिक्षा दिलवाई तथा संस्कारों के साथ पालकर बड़ा किया। अकसर उन्होंने अपने खर्चों में कटौती करके मेरी आवश्यकताओं को पूरा किया। उन्हें शब्दों में धन्यवाद देना असंभव है। तथापि, जो कुछ उन्होंने मेरे लिए किया है और अब भी कर रहे हैं, मैं उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहता हूँ। इसी वक्त मैं अपने बड़े भाई विकास कृष्ण बंसल का धन्यवाद करता हूँ। वह एक ऐसी शिला हैं, जिससे जब भी मैं अपने विश्व-भ्रमण से वापस आऊँ तो अपना जहाज उनसे बाँध सकता हूँ। मेरे ससुरजी श्री आदर्श अग्रवाल एक अद्भुत पुरुष हैं। मेरी इच्छा है कि मेरे पास भी उनकी तरह की ऊर्जा और स्वभाव होता। मैं उनका और अपनी सासजी का भी धन्यवाद करना चाहूँगा, जिन्होंने हमेशा मेरी उपलब्धियों

में गर्व अनुभव किया है और उनमें इस तरह लुत्फ उठाया है, जैसे कि वह उनकी ही रही हों।

कई संस्थाओं और संगठनों ने मुझे अपने विद्यार्थियों और शिक्षकों को संबोधित करने के लिए अकसर बुलाया है। मैं उन सबको, मुझमें और मेरी योग्यताओं में विश्वास के लिए कि मैं उनके टीचरों और स्टाफ को प्रेरणा दे सकता हूँ, धन्यवाद करता हूँ। मैं उन सब यू.आर.एल.एस. (U.R.L.S.) और वेबसाइट्स का धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने मुझसे सूचनाएँ बाँटी हैं। मैं 'विकीपीडिया फाउंडेशन' का विशेषकर धन्यवाद करना चाहूँगा। वे एक बहुत ही अद्भुत काम कर रहे हैं। वे जो अच्छे गुण की सूचनाएँ निःशुल्क सबके लिए उपलब्ध करा रहे हैं, उसके लिए मैं उनको बधाई देता हूँ।

मैं श्री रोशन प्रेमयोगी का धन्यवाद करता हूँ, जो हमेशा मेरे मित्र और आलोचक रहे हैं।

अंत में मैं भारतीय रेलवे में अपने सहकर्मियों और मित्रों का धन्यवाद करता हूँ। विशेषतया मैं श्रीमती तृप्ति गुरहा, जिन्होंने हमेशा मुझमें विश्वास किया है, श्री अभिजीत नरेंद्र और श्री मनोज श्रीवास्तव को उनके स्नेह और नैतिक समर्थन देने के लिए, श्री बी.एम.एस. (B.M.S.) बिष्ट को मुझे हमेशा प्रोत्साहन देते रहने के लिए, श्री पी.के. गोयल को मुझे एक मौका देने के लिए, (जब मुझे इसकी बहुत जरूरत) थी और श्रीमती आशिमा सिंह, जोकि एक अधिकारी न होकर हम सबके लिए मातृ-तुल्य थीं, उन सबको मेरा धन्यवाद। धन्यवाद देता हूँ उस विशाल भारतीय रेलवे परिवार और उसके स्टाफ को, जिसने मुझे हमेशा प्यार, स्नेह और समर्थन दिया है, खासकर तब जब मुझे इसकी सख्त जरूरत थी और जिसका मैं इतना हकदार नहीं था।

—गौरव कृष्ण बंसल

प्रस्तावना

सबसे शुरू में मुझे चार्ल्स डिकेंस को कोट करने की अनुमति प्रदान करें, ''वह सबसे अच्छा समय था; वह सबसे खराब समय था।'' उनके उपन्यास 'ए टेल ऑफ टू सिटीज' की ये शुरुआती लाइनें—आज की दुनिया, जिसमें हम रह रहे हैं, को सबसे अच्छी तरह वर्णित करती हैं। यह एक अजीब दुनिया है। इसमें बहुत ही धनवान् लोग हैं और बहुत ही गरीब लोग हैं—स्वार्थी और परोपकारी, सिद्धांतोंवाले और भ्रष्ट, बहुत उन्नत और बहुत पिछड़े हुए, अच्छे-बुरे और कुरूप सब एक ही समय में। यह मौकों की सुनहरी खान और दलदल भी है। पर सबसे अच्छी बात है कि कुल मिलाकर यह एक स्वतंत्र दुनिया है। कुछ राष्ट्रों को छोड़कर, जहाँ गणतंत्र अभी भी एक सपना है और मौलिक अधिकारों के बारे में सुना नहीं गया है—आज के व्यक्ति के पास दुनिया में असीम स्वतंत्रता है और उसके पास सामाजिक, आर्थिक और आध्यत्मिक विकास के लिए अपार संभावनाएँ हैं। राष्ट्रों की सीमाएँ अब काफी खुली हो गई हैं और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से ज्ञान व विचारों का आदान-प्रदान दुनिया के आर-पार क्षण भर में तुरत-फुरत हो जाता है। इसके फलस्वरूप भारत में एक प्रकार का पुनर्जागरण हो रहा है, जिसके हम साक्षी हैं।

1991 के बाद भारतीय आर्थिक नीतियों में सुधार और प्रशासनिक कंट्रोल कम होने के बाद नागरिकों के पास आजकल इतने मौके हैं जिनकी आज से बीस साल पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। भारतीयों को आजकल वैश्विक स्तर पर वह स्थान मिल रहा है जिसके वे सही हकदार हैं। भारतीय मूल के लोगों का अमेरिका (USA) और यूरोप जैसी महाशक्तियों के सामाजिक-आर्थिक विकास में बहुत बड़ा योगदान रहा है और उनका 'ग्लोबल सिटीजन' के रूप में आदर किया जाता है। पर सबकुछ इतना संतोषजनक नहीं है। वहीं इन सुधारों ने (आर्थिक एवं प्रशासनिक), जिसने भारत को एक उभरती हुई महाशक्ति बनाया है, उसे 'कट-थ्रोट' कंपटीशन के रूप में कीमत भी चुकानी पड़ी है, जिसका भारत के युवा लोगों को आजकल सामना करना पड़ रहा है। इसकी शुरुआत स्कूलों और कॉलेजों में दाखिले के लाभ से ही शुरु हो जाती है और फिर उन संस्थानों में प्रवेश लेने के वक्त, जिसमें कि प्रोफेशनल ट्रेनिंग मिलती है। पूरे भारतवर्ष

में असंख्य कोचिंग सेंटर खुल गए हैं, जो विद्यार्थियों को आई.आई.टी., इंजीनियरिंग कॉलेजों और मेडिकल कॉलेजों में दाखिला लेने के लिए विशेष प्रकार की ट्रेनिंग देते हैं। यदि आपको किसी अन्य वैकल्पिक कैरियर, जैसे कि संगीत, नृत्य या खेल-कूद में जाना है तो अब उसमें भी प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है। हमारे समाज में भ्रष्टाचार एक गंभीर बीमारी के रूप में फैल गया है और आम जनता में यह धारणा बन गई है कि बिना पैसे (धन) के या बिना जान-पहचान के आप सफल नहीं हो सकते।

हर दिन कम होती उपलब्धियों की आयु के मद्देनजर लोगों में एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ मच रही है। दुर्भाग्यवश, इस दबाव के कई गंभीर और नकारात्मक सामाजिक दुष्परिणाम हुए हैं। इस दबाव के चलते आजकल हमारे देश के युवा-वर्ग में (13-19 साल) आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ गई है। हर साल अनेक युवा इसकी चपेट में आ जाते हैं। यह कुंठा की प्रवृत्ति हाईस्कूल से लेकर इंजीनियरिंग और मेडिकल कॉलेजों में दाखिले को लेकर है। और सबसे ज्यादा चौंकानेवाली बात तो यह है कि यह उन लोगों तक ही नहीं सीमित है जो किसी परीक्षा में फेल हो गए है, बल्कि उन लोगों में भी है, जोकि पास तो हो गए हैं, पर अच्छे ग्रेड्स नहीं आए हैं, या टॉप ब्रैकेट में (उच्च) स्थान नहीं मिला है। आजकल समाज में तमाम नैतिक मूल्यों का भी हनन हो रहा है। धन ही सबकुछ है। और सारी उपलब्धियों का अंत भी यह है कि किसके पास कितना धन है। इस संदर्भ में भर्तृहरि के 'नीति शतक' में कहा गया है—

''सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्तिः।''

बच्चों के बढ़ते हुए अपराधों के मूल में भी यही भावना काम करती है कि हम जल्दी-से-जल्दी किसी भी शॉर्टकट तरीके से धनवान् बन जाएँ। इसमें मीडिया ने और ''करेला को भी नीम चढ़ा'' का काम किया है तथा अब परिदृश्य और अंधकारमय है। मैं टेलीविजन को इस संदर्भ में सबसे बड़ा अपराधी मानता हूँ। हर तरह के (बकवास) प्रोग्राम बिना किसी चेक के, बिना सेंसर के हमारे युवाओं तक पहुँच रहे हैं। 'रियलिटी शो' में भाग लेनेवाले लोगों पर छोटे-मोटे कुछ काम करने के लिए यूँ ही लाखों रुपए लुटा दिए जाते हैं। इससे धन के मूल्य की कोई कद्र नहीं रह गई है। धन का मूल्य हमारे युवाओं की आँखों में घट गया है। अधिकतर लोग इस चीज का मंत्र ढूँढ़ने में लगे हुए हैं कि कैसे जल्दी-से-जल्दी धनवान् बन जाएँ। पुरानी स्थापित मान्यताएँ-सफलताएँ, कठोर मेहनत और नैतिक आधारों पर आधारित थीं। उनमें गंभीर क्षरण हो गया है। सस्ते एवं चालू साहित्य ने अच्छे और ज्ञानदायी साहित्य का स्थान ले लिया है। हलका साहित्य ही उन युवाओं का प्रिय हो गया है, जिन्हें अब भी कुछ पढ़ने में दिलचस्पी है।

कुल मिलाकर अब लोगों में पढ़ने की आदत धीरे-धीरे बहुत ही कम हो गई है। यह इस बात से पता चलता है कि आज की जो युवा पीढ़ी है उसे 'मैक्डोनाल्ड' और 'पीजा-हट' के बारे में अपने देश के स्वतंत्रता-संग्राम से ज्यादा पता है।

यह पुस्तक हमारे युवा-वर्ग के मन-मस्तिष्क से इस प्रकार की प्रवृत्ति को कम करने या खत्म करने का एक प्रयास है।

मैं 'प्रयास' शब्द का इस्तेमाल कर रहा हूँ, क्योंकि कोई एक पुस्तक या एक लेखक की रचना सारे सवालों का जवाब देने का दावा नहीं कर सकती। इस पुस्तक में मैंने उन समस्याओं (मसलों) को संबोधित करने की चेष्टा की है, जोकि उन लोगों के सामने आती हैं, जो जीवन में सफलता पाना चाहते हैं। मैंने यह दरशाने की कोशिश की है कि किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिए एक 'रोडमैप' (योजना) की जरूरत होती है। कुछ चीजें हैं, जो एक व्यक्ति को जरूर करनी चाहिए। क्या करना है या क्या नहीं करना है, यह निर्णय जरूर लेना चाहिए। और कुछ गुणों का अपने अंदर अवश्य विकास करना चाहिए, इसके पहले कि आपको सफलता मिल सके।

पर मैं यह अवश्य कहना चाहूँगा कि इस पुस्तक में जो विचार-विमर्श किए गए हैं, वे मेरी कल्पना की उपज नहीं हैं। इसमें जिन मसलों पर विचार किया गया है, वे सब मेरे किसी-न-किसी सेमीनार, जो सफलता पर थे, उसमें उठे थे और उनपर विचार-विमर्श हुआ था, मंथन हुआ था। इनमें से कुछ मुझसे निजी तौर पर व्याख्यान देने के दौरान या सेमीनार में भाग लेनेवालों द्वारा डिस्कस/ विचारित किए गए थे। इस पुस्तक में मैंने बार-बार इस बात को दोहराया है कि किसी के ऊपर दोष की उँगली उठाने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि शेष तीन उँगलियाँ आपकी ओर इशारा कर रही हैं। बिना अच्छी तरह अपने अंदर झाँके कोई भी सफलता नहीं पा सकता। 'दूसरों को क्षमा कर दें, पर अपने को कभी नहीं।'—यह इस पुस्तक का केंद्र-सार है। इस पुस्तक में बताया गया है कि हमें अपने लिए एक मापदंड (Standard) या लक्ष्य अवश्य रखना चाहिए और उसे पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

मेरा यह दावा है कि वे घटक, जो हमारे सोचने की प्रक्रिया से जुड़े हैं और जो हमारे कंट्रोल में हैं, वे हैं हमारी सोच-प्रक्रिया, विश्व-दृष्टि और हमारे काम करने का नजरिया या एटीट्यूड। बजाय इसके कि हम अपना समय उन चीजों पर नष्ट करें, जिन पर हमारा कोई वश नहीं, हमें उन चीजों पर अपना ध्यान लगाना चाहिए या फोकस करना चाहिए, जिन्हें हम कंट्रोल कर सकते हैं। अकसर ऐसा ही होता है कि हम इस प्रकार से काम करते हैं तो जो लक्ष्य अप्राप्य है, वह प्राप्य हो जाता है।

मैंने इस पुस्तक को तीन हिस्सों में बाँटा है। पहले खंड में इस बात पर चर्चा की गई है कि यह 'सफलता' क्या चीज है, उसके साथ जो चुनौतियाँ जुड़ी हैं, जैसे धनाभाव, कोचिंग या शिक्षा की कमी या पारिवारिक पृष्ठभूमि की कमी या किसी काम पर ध्यान न लग पाना अथवा प्यार में अपने प्रेमी/प्रेमिका द्वारा ठुकरा दिया जाना।

दूसरे खंड में (जिससे इस पुस्तक का शीर्षक लिया गया है) मैंने तीन राष्ट्रों की कहानी—अमेरिका, जर्मनी और जापान, (दूसरे विश्व युद्ध के परिप्रेक्ष्य में) तथा कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों की संक्षिप्त जीवनी द्वारा यह दरशाने की कोशिश की है कि यदि हममें 'कभी मरेंगे नहीं' (Never Say Die) का दर्शन है तो फिर हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में अवश्य कामयाब होंगे। ये प्रसिद्ध व्यक्ति हैं अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन, स्टीफेन हॉकिंग, लाल बहादुर शास्त्री, थॉमस अल्फा एडीसन आदि जिनके दृढ़ निश्चय और अथक प्रयास से उन्हें तमाम बाधाओं के बावजूद महानता मिली। पुस्तक का तीसरा खंड 'कुरूप बत्तख का बच्चा' मेरी अपनी कहानी है। मैं यह जरूर जोड़ना चाहूँगा कि यह मेरी पूरी आत्मकथा नहीं है। मुझे अपने बारे में कोई भ्रम नहीं है और मैं कोई 'सेलीब्रेटी' (महान् हस्ती) नहीं हूँ। यह केवल भारत के एक सामान्य शहर में रहने वाले एक सामान्य व्यक्ति की कथा है, जिसकी देख-रेख एक सामान्य तरीके से हुई है। मैंने अपनी केस स्टडी इस पुस्तक में इसलिए शामिल की है, जिससे आपको यह पता चले कि 'सफलता' पर लिखी पुस्तक के लेखक को भी सफलता यूँ ही थाली में परोसी नहीं मिल गई थी।

मैं उसी प्रकार का एक साधारण आदमी हूँ जैसा आपके पड़ोस में ही कोई रहता हो। मुझे उम्मीद है कि मेरे फेल होने से आप अपना नाता जोड़ सकेंगे और यह बात समझेंगे कि 'फेलियर' वास्तव में सफलता के 'बिल्डिंग ब्लॉक्स' हैं। आपकी यह इच्छा होनी चाहिए कि 'फेलियर' को स्वीकार कर सकें, उसकी जिम्मेदारी लें और उससे सीख लेकर एक नई शुरुआत करें तथा अपने पिछले अनुभव को ध्यान में रखकर उसका लाभ उठाएँ।

मुझे उम्मीद है कि आप इस पुस्तक में एक पुस्तक नहीं, बल्कि एक दोस्त पाएँगे। मैं उत्सुकता से आपकी टिप्पणियों, आलोचनाओं और 'फीडबैक' की प्रतीक्षा करूँगा।

आपका,

गौरव कृष्ण बंसल

जीतना : बाधाओं के बावजूद

मैंने एक बार एक कहानी पढ़ी थी—काफी पुरानी, पर बहुत लोकप्रिय। पर यदि आप उन कुछ लोगों में से हैं जिन्होंने इस कहानी को पहले पढ़ा या सुना नहीं है, उनके लाभ के लिए यह कहानी मैं यहाँ दोहरा रहा हूँ। यह कहानी एक कुरूप बतख के बच्चे की है।

यह इस प्रकार से है—एक समय की बात है, एक बतख थी। वह बड़ी, मोटी और अपने बच्चों की परवाह करनेवाली माँ थी। उसने एक बार कुछ अंडे दिए और उन्हें सेने में वह व्यस्त थी। अपनी सोच में वह प्यारे बच्चों की कल्पना करती थी। वह छोटे-छोटे, गोल-गोल और मुलायम परोंवाले बच्चों की कल्पना करती थी, जो उन अंडों में से निकलेंगे। वे उसके पाँवों के इर्द-गिर्द झुंड में घूमेंगे और बेबी-डक की तरह बोलेंगे। वे उसके पीछे-पीछे चारों तरफ चलेंगे और अपने जाले की तरह पाँवों से अपने पहले कदम झील के ठंडे पानी में रखेंगे। वे इधर-उधर तैरेंगे और उसके आस-पास की जिंदगी खुशनुमा व खूबसूरत हो जाएगी। वह बेशक सारी दुनिया में सबसे गर्वीली और प्रसन्न माँ-बतख होगी। उसके खयालों में तब खलल पड़ा, जब उसके पेट में अचानक गड़गड़ होने लगी। 'अरे, उछलती मछलियाँ!' उसने सोचा, 'मेरे खयाल से मुझे कुछ खाना चाहिए।' वह उठी, अपने शरीर को अच्छी तरह हिलाया और कुछ खाने के लिए झील की ओर चल पड़ी।

जब वह दूर गई थी, वहाँ घूमते-घामते एक हंसनी माँ आ गई। उसने अभी-अभी कुछ अंडे दिए थे तथा वह झील में स्नान करने के लिए जा रही थी। जब वह चल रही थी, तब भी, झील में रहनेवाले जीव-जंतु उसकी ओर प्रशंसा की दृष्टि से देख रहे थे। झील, जिसके चारों ओर खर-पतवार उग आए थे। अचानक उसे अजीब महसूस हुआ, जैसे एक और अंडा उसके पेट से निकलने वाला हो! वह घबरा गई। न तो वह उस अंडे को बाहर आने से रोक सकती थी और न ही अंडा देने में देरी कर सकती थी। अब केवल एक ही विकल्प था कि वह खुले में अंडा दे दे, जहाँ उसके बचने की संभावना कम ही थी।

यदि वह अपने घोंसले की ओर भागकर जाना चाहे तो अब वह भी संभव नहीं था, कि वह अपने नीड़ तक वह समय से पहुँच पाएगी। तभी उसकी निगाह माँ-बतख के घोंसले पर पड़ी। उसे अपने अंडे के लिए आशा की एक किरण दिखी। दौड़कर उसने उस नीड़ में अपना अंडा भी दे दिया। फिर इस बात से संतुष्ट होकर कि उसका अंडा सुरक्षित रहेगा, वह झील की ओर चली गई।

जब माँ बतख लौटकर आई तो उसे अजीब-सा महसूस हुआ। उसे लगा कि कहीं कुछ गड़बड़ है। उसमें से एक अंडा बड़ा दिख रहा था। वह जितने अंडे छोड़कर गई थी, उससे ज्यादा भी लग रहे थे। 'मैं सपना देख रही हूँ क्या?' उसने सोचा, 'या मैंने ज्यादा मछलियाँ खा ली हैं। उससे मुझे हमेशा नींद-सी लगने लगती है। और मैं इतनी नींद में भर गई हूँ कि मुझे तरह-तरह की चीजें दिखने लग गई हैं। बेहतर है कि मैं अपने अंडों को सेना शुरू कर दूँ, इससे पहले कि वे ठंडे पड़ जाएँ।' इस प्रकार फिर वह एक बार अंडों पर बैठ गई और अपने विचारों में खो गई।

कई दिन बीत गए। अब अंडों में से चूजे निकलने का समय आ गया था। जैसाकि माँ बतख ने कल्पना की थी, अंडों में से छोटे-छोटे, पीले-पीले, गुलगुले गेंद जैसे चूजे निकलने लगे थे। वे उसकी कल्पना से भी कहीं ज्यादा सुंदर थे। सब अंडों में से चूजे निकल आए थे, लेकिन फिर भी एक अंडा बचा रह गया था। वह अब भी बड़ा दिख रहा था। फिर अचानक उस अंडे का भी अपना खोल फूटने लगा। फिर एक लंबी सी चोंच निकली, फिर एक अजीब बड़ा सा सिर और फिर एक पूरा बतख का बच्चा। माँ बतख को उसे देखकर धक्का लगा। वह निश्चय ही कुरूप था। वह सफेद रंग का बड़ा अजीब-सा शेड था—बहुत बड़ा—और बेडौल!

'ओ कुलबुलाते हुए मेढक, इस अंडे को क्या हो गया!' उसने सोचा। फिर भी आखिरकार वह एक माँ बतख थी। और यह कल्पना करना कठिन है कि माँ बतख से ज्यादा प्यार करनेवाला और परवाह करनेवाला कोई अन्य भी हो सकता है। सो वह कुरूप बतख के बच्चे को भी उतना ही प्यार करती थी—इस बात की परवाह किए बिना कि वह कुरूप था। पर वह कुरूप बतख का बच्चा ज्यादा खुश नहीं था और सारे बतख के बच्चे उसका मजाक उड़ाते थे। बाकी अन्य पक्षी भी उसका मजाक उड़ाते थे। उसका कोई दोस्त नहीं था। उसे अन्य पक्षियों ने त्याग दिया था और वह बहुत दुःखी था। जैसे-जैसे समय निकलता गया, वह अपने जीवन से निराश और दुःखी हो गया था। अभी तक उसका कोई मित्र नहीं बना था। उसकी माँ बतख ने और अंडे दे दिए थे और उन्हें सेने में व्यस्त हो गई थी। काफी दिन तक ऐसे ही चलता रहा। फिर एक दिन उसने सोचा कि अब बहुत हो गया और इसका सबसे अच्छा उपाय है कि वह अपने जीवन का

अंत कर दे। इस इरादे से वह छपछप करके झील में चला गया। उसने सोचा कि मैं नदी के दूसरे तट पर चला जाऊँ, जहाँ लोमड़ी और वीजल रहते थे। जब वह दूसरे किनारे की ओर जा रहा था, उसने बहुत ताकतवर पंखों की फड़फड़ाहट सुनी। उसने जब सिर उठाकर देखा तो पाया कि तीन बड़े सुंदर पक्षी उसके ऊपर से उड़कर जा रहे थे। उनके पर बर्फ की तरह सफेद थे और चोंच सुंदर गुलाबी रंग की थीं। उन्होंने जेट काले पाँव बहुत सफाई से अपनी पीछे की पूँछ में छिपाए हुए थे और अपने पंखों को बड़ी लय से चलाकर आगे की ओर बढ़ रहे थे। उनके लंबे-लंबे और बहुत शानदार पंख थे। कुरूप बतख का बच्चा उन्हें भय-मिश्रित आश्चर्य से देख रहा था। उसने सोचा कि काश, वह उन सुंदर पक्षियों की तरह होता! धीरे-धीरे छपछप करते हुए वह दूसरे तट पर पहुँच गया। वहाँ पर पानी काँच की तरह बिलकुल साफ व चमकदार था। ऐसा इसलिए था कि लोमड़ी और सियार के डर से उस तट पर चिड़ियाँ नहीं आती थीं। 'लोमड़ी, सियार आओ और मुझे खा जाओ'—वह चिल्लाया, पर कोई लोमड़ी या सियार वहाँ नहीं आया। वह इतना कुरूप था कि कोई लोमड़ी या सियार उसको खाना नहीं चाहता था। और ज्यादा दुःखी होकर उसने झील के किनारे बैठकर रोना शुरु कर दिया। बड़े-बड़े खारे आँसू की बूँदें टपककर झील में गिर गईं। चमकते हुए पानी ने उसका ध्यान अपनी ओर खींचा और उसने झुककर पानी में देखा। उसको यह देखकर बड़ा अचंभा हुआ कि वह सुंदर पक्षी, जिसे उसने अभी आसमान में उड़ते हुए देखा, वह तो पानी के अंदर रहता था। फिर उसने अपने सिर को हिलाया तो झील के अंदर उस सुंदर पक्षी ने भी अपना सिर हिलाया। कुरूप बतख के बच्चे को फिर आश्चर्य हुआ। धीरे-धीरे उसके समझ में आया कि यह झील के अंदर कोई और पक्षी नहीं था, यह तो उसका ही प्रतिबिंब था। वह इस बात पर विश्वास नहीं कर सका। उसे यह पता था कि जो पक्षी उसने अभी देखे थे, वह हंस थे। और झील की दर्पण जैसी सतह पर देखने पर उसको उतना ही सुंदर हंस दिखा। अपने शक्तिशाली पंखों को फड़फड़ाते हुए वह फिर नीले आसमान में उड़ गया—अपनी ही तरह के सुंदर हंसों में अपनी जगह पाने के लिए।

हमने यह पूरी कहानी आपको एक खास उद्देश्य से बताई है। क्या यह किस्सा आपको अपनी याद दिलाता है? क्या आपने कभी इस कुरूप बतख बच्चे की तरह महसूस किया है? बिना दोस्त के, त्यागे हुए, नकारा, उदास और पूरी तरह से दुःखी क्या आपके मन में कभी यह विचार आया है कि इन सब समस्याओं का हल किसी ऊँची इमारत से नीचे छलाँग लगा देना है? मेरा अनुमान है कि आपका जवाब 'हाँ' होगा, जैसाकि अधिकतर मामलों में होता है। यदि वाकई में आपका जवाब 'हाँ' है तो यह किताब पढ़िए और आपके अंदर जो एक सुंदर हंस छुपा हुआ है, उसे खोज निकालिये।

सफलता क्या है?

क्या आप स्वयं को असफल मानते हैं? क्या आप इस बात से आश्वस्त हैं कि यह निश्चय ही आपकी गलती नहीं है। यह स्वाभाविक है। सफलता हमारी अपनी करनी है और असफलता के कई कारण होते हैं, और उनमें सब हमारे नियंत्रण के दायरे से बाहर होते हैं। पर वास्तव में स्थिति इतनी सीधी-सादी नहीं है। बेशक आपने काम किया। आपने वास्तव में कड़ी मेहनत की। खून-पसीना एक कर दिया। ठीक है, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आपने काम नहीं किया। पर यह हो सकता है कि आपने महत्त्वपूर्ण बिंदु को नजरअंदाज कर दिया हो। अतएव, इसके पहले कि हम आगे कुछ विचार करें, हम इस बिंदु पर गौर कर लें।

सफलता एक सोचा-समझा निर्णय है

यह बड़ा अजीब-सा लगता है? है ना? सफलता कैसे एक निर्णय हो सकती है? यह एक परिणाम है, एक निर्णय नहीं। सफलता वह चीज है, जो आपकी तमाम कड़ी मेहनत के बाद मिलती है। 'यह एक चांस है, संयोग है'। आप यह नहीं कह सकते हैं कि आपने निश्चय कर लिया है कि मैं एक सफल व्यक्ति हूँ। चाहे आप जितनी मेहनत से काम करें, यह जरूरी नहीं है कि सफलता आपको मिले ही। सफलता मिल भी सकती है और नहीं भी मिल सकती।

यह बिलकुल सही है। हममें से ज्यादातर लोगों का सोचना यही है। पर फिर से सोचिए! मसलन आप एक ट्रिप पर जा रहे हैं, छुट्टी पर। क्या आप अपना सामान बाँधेंगे, टिकट खरीदेंगे, होटल में रिजर्वेशन कराएँगे, टैक्सी बुक कर लेंगे और फिर अंत में निश्चय करेंगे कि आप कहाँ जाना चाहते हैं? जाहिर है, ऐसा नहीं है। यह क्रम गलत है। सबसे पहले आप इस निश्चय करने में काफी समय लगाएँगे कि आप कहाँ जाना चाहते हैं। तब आप टिकट बुक करवाएँगे, होटल रिजर्वेशन कराएँगे, और टैक्सी बुक करेंगे। अंत में जाने से पहले अपना सामान बाँधेंगे। यही सहज बुद्धि है, सही तरीका है। पर यही सहज बुद्धि हम सब तब भूल जाते हैं जब हम अपनी जिंदगी का सबसे अहम फैसला लेते हैं—यानी सफलता का रास्ता पकड़ते हैं।

अब हम अपने मूल कथन पर लौटते हैं—'सफलता एक निर्णय है।' आप कभी सफल नहीं हो सकते, जब तक आप यह निर्णय या संकल्प नहीं लेते कि हमें सफल होना है। आप तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि आप सफलता की अपनी परिभाषा के बारे में स्पष्ट नहीं हैं। अगर बिलकुल सही-सही कहा जाए तो हर आदमी की सफलता की परिभाषा दूसरे आदमी से अलग है। मैं

तो यह कहूँगा कि यह प्रत्येक आदमी की उँगली की छाप की तरह अलग और अनूठी है। अतएव हममें से बहुत लोग हमारी सफलता को दूसरे की सफलता की अवधारणा से 'कनफ्यूज' करते हैं या इस भ्रांति में रहते हैं। हम दूसरों के 'बेंच-मार्क' को अपनी सफलता का मापदंड मानते हैं। इस प्रकार से इस प्रक्रिया में असली मुद्दा भूल जाते हैं। एक आदमी के लिए सफलता बहुत सारा धन एकत्र करना हो सकता है या दूसरे के लिए स्थायित्व (जॉब आदि में)। कुछ अन्य लोगों के लिए रोमांच हो सकता है—बढ़त, जिम्मेदारी, प्रेम, अपने कार्य से संतुष्टि (जॉब-सैटिस्फेक्शन) या यह सबकुछ अथवा इसमें से कुछ चीजों का सम्मिश्रण। हममे से ज्यादातर लोग रेस्त्राँ में जाकर यह गलती करते हैं कि जो 'ऑर्डर' अन्य लोग दे रहे होते हैं, उसी चीज या खाने का ऑर्डर हम भी दे देते हैं, जोकि बाद में हमें भाता नहीं और हम उसे पचा नहीं पाते। दूसरे शब्दों में, हम उसी डिब्बे में कूदकर सवार हो जाते हैं, जिसमें अन्य लोग जा रहे होते हैं या भेड़चाल। तो दुबारा सोचिए—क्या आपने वह खाना मँगवा लिया है, जिसको आप पसंद नहीं करते? क्या आप भेड़चाल में शामिल हो गए हैं? क्या आप यह सिद्ध करना चाहते हैं कि आप उतने ही अच्छे हैं, गुणी हैं, जैसे कि आपके साथी-संघाती; जबकि प्रथमतया आप उस कंपनी या ग्रुप का एक हिस्सा नहीं होना चाहते हैं? इन सब सवालों का जवाब हो सकता है—'हाँ', 'मुझे पता नहीं' या 'हो सकता है'। तो हम इस समस्या का उत्तर कैसे पाएँ? हो सकता है, आपको नीचे दी हुई कहानी अपने सवाल का हल खोजने में मदद करे!

अप्रसन्न सर्जन

एक समय की बात है एक विश्व-विख्यात सर्जन (शल्य-चिकित्सक) थे। वह वाकई में सबसे बढ़िया थे। लोगों का कहना था कि उनमें इतना हुनर था कि वह मुरदा आदमी को भी एक बार जिंदा कर दें। वे न सिर्फ एक बहुत बढ़िया सर्जन थे, बल्कि अपने आप में एक बढ़िया इनसान थे और उन्हें सब लोग चाहते थे और सभी उन्हें प्यार करते थे। अपने 50 साल लंबे सेवाकाल के बाद उन्होंने रिटायर होने का निश्चय किया। उनके सब मित्रों, शुभचिंतकों और पुराने मरीजों ने उन्हें एक फेयरवेल पार्टी (विदाई-पार्टी) देने का फैसला किया। वह बहुत ही भव्य पार्टी थी। सर्जन साहब अभिभूत! एक विशाल मंच पर नृत्यांगनाएँ नृत्य कर रही थीं। सर्जन सामनेवाली कतार में अपने सबसे अच्छे दोस्तों के साथ बैठे हुए शो देख रहे थे। अचानक उनके दोस्त ने देखा कि सर्जन की आँखों से आँसू बह रहे थे।

‘‘टॉम, क्या बात है?’’ उसने पूछा। उसने सोचा कि संभवतः जो प्यार उनपर लोगों ने बरसाया है, उससे वे भावुक हो गए हैं, या शायद वह अभी से ही अपने काम को ‘मिस’ करने लगे हैं।

‘‘कोई बात नहीं है, माइक।’’ सर्जन ने जवाब दिया।

‘‘ओह टॉम, बता भी दो! मैं तुम्हें लगभग 30 वर्षों से जानता हूँ, पर कभी भी तुम्हारी आँखों में आँसू नहीं देखे थे। तुम रिटायर हो रहे हो, क्योंकि अपने मरीजों पर अब तुम अपनी बढ़ती हुए आयु के कारण ऑपरेट नहीं कर सकते पर देखो, लोग अब भी तुम्हें कितना प्रेम करते हैं! कोई भी अस्पताल तुम्हें अभी भी कंसल्टेंट सर्जन के रूप में रख सकता है।’’

सर्जन चुप रहे, पर उनकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रही थी।

‘‘कम ऑन टॉम! कम-से-कम अपने बेस्ट फ्रेंड (सबसे अच्छे दोस्त) को तो बता ही सकते हो कि क्या वजह है?’’

‘‘माइक, वास्तव में बात यह है,...’’ सर्जन ने कहना शुरू किया, ‘‘दरअसल मैं उन किन्हीं कारणों से नहीं रो रहा, जो तुमने अभी-अभी बताए हैं। मैं अपने काम से, पेशे से उसके उच्च शिखर पर पहुँचने के बाद रिटायर हो रहा हूँ। मुझे तरह-तरह के अवार्ड्स, पुरस्कार और सम्मान मिले हैं। मुझे लोग प्यार करते हैं, सम्मान देते हैं और मेरे काम की सराहना करते हैं। मैं वाकई में एक वरदान पाया हुआ व्यक्ति हूँ।’’

‘‘तब तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों हैं, टॉम?’’

‘‘तुम जानते हो माइक, मैं जब यहाँ पर बैठकर यह भव्य आयोजन का आनंद उठा रहा हूँ, तो मैं इस बात को सोचकर व्यथित हूँ कि मैं शुरू से हमेशा एक डांसर (नर्तक) बनना चाहता था। कई लोग आज मेरी इस जगह पर आसीन होना चाहेंगे। पर मैं वास्तव में सुखी होता, यदि आज मेरी जगह स्टेज पर नृत्य कर रहे उन नर्तकों के बीच होती।’’

कहानी आपके हृदय को छू जाती है, है ना? दुर्भाग्यवश, हममें से ज्यादातर लोग इस कहानी के ‘सर्जन’ की तरह हैं। यह भेड़चाल में कूद पड़ने का नतीजा है। हममें से अधिकांश लोग मृग-मरीचिका का पीछा करते रहते हैं। हममें से ज्यादातर लोग धन, स्थायित्व, बढ़त/प्रगति जैसी मृग-मरीचिका के पीछे अपनी सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ने में लगे रहते हैं। हम यह नहीं समझ पाते कि सफलता यह नहीं है कि हम कितने धनवान् हैं या प्रसिद्ध हैं। यह हमें फिर अपनी मूल अवधारणा पर वापस ले आता है।

'सफलता एक निर्णय है'

इसके पहले कि आप सफलता के पथ पर अग्रसर हों, आपको यह तय करना है कि 'सफलता' है क्या? हो सकता है कि आप अभी-अभी 10+2 पास करके निकले हों, या हो सकता है, आप किसी कॉलेज में दाखिला ले चुके हों! आपके सामने आगे पढ़ने के लिए बहुत सारे विकल्प हैं—इंजीनियरिंग, मेडिसिन, बी.बी.ए., एम.बी.ए., बी.सी.ए., एम.सी.ए., प्रशासनिक सेवाएँ, कानून, फैशन डिजाइनिंग आदि-आदि। तो आप क्या करते हैं? मैंने कई विद्यार्थियों से पूछा कि उन्होंने यह विशेष विकल्प क्यों चुना? ज्यादातर लोगों ने हमें निम्न उत्तर दिए—

"क्योंकि मेरे ज्यादातर दोस्तों ने भी यही कोर्स चुना था।"

"मेरे पिताजी ने ऐसा करने को कहा।"

"आजकल यही ज्यादा चल रहा है।"

"इसके अलावा और कर भी क्या सकते थे?"

यह बहुत 'अस्पष्ट' उत्तर हैं। क्या आप ऐसा नहीं सोचते हैं? क्या यह सही है कि आप उसी लाइन में जाएँ या कैरियर चुनें, जो आपके दोस्तों ने चुना है, या क्योंकि आपके पिताजी सोचते हैं कि यह कैरियर आपके लिए उचित रहेगा या इसी चीज का फैशन है; या सबसे गड़बड़ यह है कि आपको पता ही नहीं कि आप क्या करना चाहते हैं! अब हम यहाँ फिर अपने छुट्टी पर जानेवाली कहानी के साम्य पर गौर करेंगे। इसका मतलब हुआ कि आप उसी जहाज पर चढ़ गए, जिसमें अन्य सब लोग चढ़ रहे थे, या आपके डैडी ने कहा कि आप इस प्लेन में चढ़ जाओ, या यह कि प्लेन बहुत खूबसूरत था, या कि आपने कभी दूसरी उड़ान/फ्लाइट के बारे में सोचा नहीं/ पता नहीं किया। इस तरह के फैसले का क्या हश्र (फल) होगा? पहला, कि प्लेन क्रैश हो जाता है और अन्य सवारियों के साथ आपकी भी मृत्यु हो जाती है। दूसरा, कि प्लेन अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच तो जाता है, पर आपकी यात्रा कष्टदायी रही तथा गंतव्य स्थान और भी बेकार जगह निकली। तीसरा, यह कि आपके डैडी को अपनी प्लेन की यात्रा बहुत अच्छी लगी हो, पर आपको वह प्लेन ज्यादा अच्छा न लगा हो, जिस पर आपको बिठा दिया गया था। चौथी बात यह हो सकती है कि आप एक बिलकुल ही अजनबी जगह पहुँच गए हों और अब पछता रहे हों कि यदि हमने ज्यादा खोजबीन कर ली होती, प्लेन पर बोर्डिंग करने के पहले तो अच्छा

रहता। पाँचवीं बात यह हो सकती है कि आपकी फ्लाइट बड़ी अच्छी रही हो और गंतव्य स्थान आपके सपनों के मुताबिक हो। हाँ, यह बात जरूरी है कि जो विकल्प हमने ऊपर लिखे हैं, उसके अलावा भी अन्य कई संभावनाएँ हो सकती हैं। अंत में जैसे-जैसे हम और परम्यूटेशन-कंबीनेशन पर विचार करते हैं, हमारी संभावनाएँ, कि हम 'बुल्ज-आई' को भेद सकेंगे—यानी अपने लक्ष्य पर पहुँच सकेंगे, कम होती जाती हैं। इन नियमों-परिस्थितियों में सफलता आपकी किस्मत और संभाव्यता के नियमों पर निर्भर करती है, चाहे आप कितनी कड़ी मेहनत क्यों न करें। इसलिए हम अंत में यह कहकर संतोष कर लेते हैं कि सफलता संयोग या भाग्य की बात है (इट इज ए मैटर ऑफ चांस)।

वास्तव में सफलता हासिल करना बहुत आसान सा काम है। यह दो नियमों पर आधारित एक निर्णय है—

1. आप यह निश्चय करें कि सफलता की आपकी क्या परिभाषा है—यानी आपको किस चीज से खुशी मिलेगी, यदि आपने उसे पा लिया।
2. आपने यह दृढ़ फैसला कर लिया है कि चाहे जो कुछ हो जाए, हम वहाँ पर पहुँचकर रहेंगे।

इन दो में से पहला निर्णय लेना ज्यादा कठिन है; क्योंकि मिठाई कैसी बनी है, बिना खाए आप नहीं बता सकते हैं। आप किसी भी खास कैरियर के बारे में पूरी तरह यह कह नहीं सकते कि आपके लिए वह सही होगा या नहीं, जब तक कि आपने स्वयं उसका अनुभव न किया हो। जैसे कि आप किसी मिठाई के स्वाद के बारे में तब तक नहीं बता सकते जब तक कि आप उसका स्वाद न ले लें। पर यदि हम आपसे कहें कि आप पार्टी के लिए सबसे अच्छी पुडिंग/मिठाई लाएँ तो आप क्या करेंगे? मैं बताता हूँ कि मैं क्या करूँगा। मैं शहर की सबसे अच्छे मिठाई की दुकान पर जाऊँगा। उसकी मिठाइयों को अच्छी तरह देखूँगा। कई उन लोगों की राय लूँगा, जो वहाँ से मिठाई लेकर आजमा चुके हैं। अपने स्वाद पर विचार करूँगा। उससे थोड़ा सा सैंपल लेकर चखूँगा। कोई ऐसी दुकान, जो साफ-सुथरी नहीं है या वहाँ कुछ अन्य प्रकार की गड़बड़ी है, उसे छोड़ दूँगा। दाम पूछूँगा और फिर मैं अपने अंतर्मन की आवाज पर वह दुकान चुनूँगा, जहाँ से मुझे मिठाई लेनी है। इसी प्रकार से जीवन में आपका कैरियर है (मेडिसिन/इंजीनियरिंग/संगीत या अन्य कोई)। इसके पहले कि आप किसी खास कैरियर का चुनाव करें, आप अपनी रुचियों, अपने रुझान पर गौर करें। सबसे अच्छे कैरियर की ओर ध्यान दें, और सही लोगों से सलाह लें। इस तरह से काम करने से हो सकता है, लोग आपका मजाक उड़ाएँ या आपको एक क्रांतिकारी की संज्ञा दी जाए या गैर-जिम्मेदाराना रवैया कहलाए; पर इन सबका कोई मतलब

नहीं। अंततः तो सूट आपने ही पहनना है। तो यह बेहतर है कि वह आपको फिट आए। क्या आप यह नहीं सोचेंगे कि कुछ समय और मेहनत लगाकर सूट को सिलवा लिया जाए? यहाँ पर मैं आपको सावधान करना चाहूँगा। हमारी जो अपेक्षाएँ हैं, उसका कोई आधार होना चाहिए। आप आइंस्टाइन नहीं बन सकते, यदि आपको 2 और 2 जोड़ना भी नहीं आता। आप कोई अच्छे नर्तक नहीं बन सकते, यदि आपके दो बाएँ पैर हों। और आप अच्छे गायक नहीं बन सकते, यदि आप उतार-चढ़ाव के साथ नहीं गा सकते।

तथापि, हमारा यह आम अनुभव रहा है कि हम सब कुछ-न-कुछ क्रिया-कलाप करना चाहते हैं। हम सब में कोई-न-कोई जन्मजात प्रतिभा होती है। हममें से कुछ गाना अच्छी तरह गा सकते हैं, कोई अच्छा लिख सकता है, किसी का मन गणित में ज्यादा लगता है और कोई-कोई फुटबॉल अच्छी तरह खेल सकता है; क्योंकि हम सब अपने अंदर से किसी-न-किसी काम में अच्छे होते हैं और उसे करने में हमें मजा आता है तथा संतोष मिलता है। इस तरह की सहज श्रेष्ठता को ही सामान्य भाषा में 'प्रतिभा' कहते हैं। और हमारी ज्यादातर प्रतिभा हॉबी के रूप में प्रकट होती हैं। एक बार मैंने एक उल्लेख पढ़ा था, 'सच्ची खुशी तभी मिलती है, जब आपकी हॉबी ही आपके जीविकोपार्जन का साधन बन जाए।'

अब इस कथन पर एक मिनट को गौर करें। क्या यह बहुत बढ़िया होगा कि आपको अपने शौकिया काम के लिए, हॉबी के लिए पैसे मिल जाएँ? इस परिदृश्य में अपने 'आउटपुट' के बारे में कल्पना करें। आप बहुत जल्द ही शीर्ष पर हो सकते हैं। और एक बार आप वहाँ पहुँच जाते हैं, तब आप वहाँ होने का स्वाद चख सकते हैं। अतएव, एक सादा संदेश है—आप तेजी मत दिखाएँ। केवल मूर्ख लोग ही सही नतीजे पर पहुँचे बिना निष्कर्ष निकाल लेते हैं। अपना समय लें, इस बारे में कुछ गवेषणा करें। अपने आपको नापें-तौलें। यदि जरूरी हो तो आप किन्हीं प्रोफेशनल (पेशेवर) लोगों से अपना आकलन करवाएँ। जो लोग विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, उनसे बातचीत करें। उनसे उनकी बेबाक और ऑब्जेक्टिव राय जानें। जितने ज्यादा स्रोतों से हो सके, उतने ज्यादा स्रोतों से सूचना जुटाएँ जो सूचना जुटा रहे हैं या जुटाई हैं, उस पर खूब सोच-विचार करिए। आप पता करिए कि आपके लिए कौन सी लाइन सबसे ज्यादा उपयुक्त रहेगी। और तब एक निर्णय लें।

इस फैसले को लेने का महत्त्व कम नहीं किया जा सकता। एक बार आपने यह फैसला ले लिया तो आपने अपना गंतव्य (लक्ष्य) चुन लिया। (किस दिशा में जाना है, इसका फैसला भी हो गया। और सफलता एक 'वेक्टर' (सदिश) चीज है। हममें जिन लोगों को हाई स्कूल की फिजिक्स कुछ याद है, उन्हें पता होगा कि 'वेक्टर' में मैग्नीट्यूड (मात्रा) और दिशा दोनों होती हैं।

सफलता एक वेक्टर होती है, क्योंकि आप कितनी भी मेहनत क्यों न करें, आपको सफलता तभी मिलेगी जब आपकी दिशा निर्धारित होगी। आदर्शतया दिशा 100 प्रतिशत सही होनी चाहिए। पर सामान्यतया ऐसा संभव नहीं होता। मैंने आपको जो तमाम उपाय बताए हैं, वे न केवल आपको दिशा (लक्ष्य) निर्धारित करने में मदद करेंगे, बल्कि वहाँ तक पहुँचने का सबसे सस्ता और सुगम रास्ता भी बताएँगे। और यह भी कि आपके द्वारा किया गया उतनी ही मात्रा में काम आपको उसके अधिकाधिक नजदीक ले जाएगा। आप सोचते होंगे कि कभी-कभी कैसे कुछ आदमी बिना उतनी मेहनत किए, जितनी की अपेक्षा थी, अपने गंतव्य पर पहुँच जाते हैं, जबकि आप उससे कहीं ज्यादा मेहनत करते हैं? जवाब आपके सामने है। ऐसे लोग सही दिशा में चल रहे हैं, प्रयासरत हैं। अपने प्रयासों द्वारा ज्यादा-से-ज्यादा उत्पादन कर पाते हैं या अपने लक्ष्य के नजदीक पहुँच जाते हैं; क्योंकि उन्होंने पहली बार में सही दिशा में चेष्टा की है। ये वे लोग हैं, जिन्होंने निर्णय कर लिया है। फलस्वरूप वे संतुष्ट, दक्ष और स्थिति के कंट्रोल में लगते हैं। क्या आप ऐसे लोगों की श्रेणी में आना चाहते हैं? तो आगे बढ़िए! फैसला कीजिए!

अब हम दूसरे निश्चय की ओर आते हैं। मान लिया कि आपने निश्चय कर लिया है कि आपको छुट्टियों में कहाँ जाना है। आपको वहाँ जाने की इच्छा होनी चाहिए। आप यह नहीं कह सकते कि आप उन छुट्टियाँ को एक महीने बाद लेंगे। एक महीने बाद बहुत देर हो जाएगी। हो सकता है, बारिशें आ जाएँ! आपका बॉस आपको छुट्टी देने के लिए मना कर सकता है। कोई ऐसी इमरजेंसी आ सकती है जिससे आप प्रथमतया छुट्टी माँग ही न सकें। आपकी वित्तीय हालत बिगड़ सकती है। हो सकता है कि सारी फ्लाइटें पहले से ही बुक हो गई हों। एक महीने पहले जो जगह 'स्वर्ग'थी, वहाँ जनता का आंदोलन शुरु हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि वहाँ की सरकार बदल जाए और नई सरकार विदेशियों के आने पर प्रतिबंध लगा दे। या वहाँ पर सुनामी आ जाए अथवा ज्वालामुखी फूट पड़े। इस तरह की तमाम संभावनाएँ हैं। उसका (शुद्ध) परिणाम वही है। हो सकता है कि आप छुट्टियाँ बिलकुल ही न मना पाएँ। एक बार आपने एक गंतव्य के लिए फैसला कर लिया है तो बाकी अन्य सब गंतव्य स्थान लिस्ट से बाहर हो जाते हैं, जब तक कि आप अपने पहले चुने हुए स्थान पर नहीं पहुँच जाते। अतएव, सारी कोशिशें बिना किसी विलंब के तुरंत शुरु कर देनी चाहिए ।

(Nose to the grindstone) नियम है, जैसाकि अंग्रेजी में कहावत है। ढील-ढाल करना या टालते रहना ठीक नहीं है। अब जब आपको पता है कि आपको कहाँ जाना है तो बाकी सब औपचारिकता और इच्छा-शक्ति है। बाकी

सब चीजें प्रतीक्षा कर सकती हैं। आपको वहाँ जाने की इच्छा होनी चाहिए। यह आपके सिस्टम में होना चाहिए। अगर इसमें अध्ययन की जरूरत है तो वह आपको अपने आप करना है, न कि आपके अभिभावक को बार-बार पढ़ने के लिए कहना पड़े। यदि यह कला या खेल-कूद है तो बिना किसी के कहे आपको इसका अभ्यास करना है।

आपको एक सेल्फ-स्टार्टिंग इंजन की तरह होना है, न कि किक स्टार्टवाले इंजन की तरह। सारे विकल्पों को देखना है। इस बात पर जोर देना चाहिए कि अपने गंतव्य स्थान पर जल्दी-से-जल्दी पहुँच जाएँ। प्रयासों पर इतना विचार नहीं करना चाहिए। याद रखें कि आपने फैसला कर लिया है। आप अपने लक्ष्य के प्रति वचनबद्ध हैं। कोई भी निर्णय, निर्णय नहीं है, जब तक कि उसे लागू नहीं किया जाए। कोई भी वचनबद्धता, वचनबद्धता नहीं है, जब तक उसे निभाया नहीं जाए। जब यह निर्णय ले लिया गया है, तब आपको शब्द-भंडार में से 'यदि' शब्द हटकर 'जब' हो जाना चाहिए। एक बार आपने सफल होने का निर्णय ले लिया है, तब आप यह कहना बंद कर देंगे कि 'यदि मैं यह बन गया...'। इसके बजाय आप कहेंगे, 'जब मैं...बन जाऊँगा...'(जब मैं डॉक्टर बन जाऊँगा, इंजीनियर बन जाऊँगा आदि)। मैं आपको यह बता दूँ कि 'यदि मैं' को 'जब' से स्थानापन्न करना आसान नहीं है। हममें से ज्यादातर लोगों का मानना है कि सफलता भाग्यवश या संयोग से मिलती है। एक संभावना है, पर 'अवश्यंभावी' चीज नहीं है। 'यदि' की जगह 'जब' लगाना एक 'पैराडिम्म शिफ्ट' है—यानी 'एक प्रतिमान का बदलना' है। एक अकेले शब्द के बदलने से स्थापित सिद्धांत टूट जाते हैं और एक नई रोशनी निकलकर आती है।

ऐसे में आप ज्यादा आत्मविश्वास से भरे होते हैं, ज्यादा कंट्रोल में होते हैं और शत-प्रतिशत वचनबद्ध भी होते हैं। आपका लक्ष्य स्पष्टतया आपकी दृष्टि में होता है। आपकी दृष्टि दिमाग में पूरी तरह से केंद्रित होते हैं। अब आप अपने लक्ष्य के लिए क्षमाप्रार्थी नहीं हैं। आप अपनी छत पर खड़े होकर अपना लक्ष्य घोषित कर सकते हैं। अब आप नाकामी से नहीं डरते हैं। फेल होना अब कोई विकल्प नहीं है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करना ही एक दृढ़ निश्चय है और अवश्यंभावी है। अब यह सवाल नहीं है कि 'यदि मैं वहाँ पहुँच गया,' अब यह मसला है—'जब मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा।'

एक उचित पारिवारिक पृष्ठभूमि की कमी

विद्यार्थियों के साथ मेरे जो सेशन होते हैं, उनमें यह प्रश्न बहुत पूछा जाता है। हममें से बहुत लोग यह अनुभव करते हैं कि हमारी पृष्ठभूमि और देख-रेख तथा

शिक्षा-दीक्षा ऐसी नहीं है, जो हमें लक्ष्य तक पहुँचने में हमारी मदद करें। ऐसे तमाम उदाहरण हैं, जो हमारे इस विश्वास को पक्का करते हैं।

हमने देखा है कि जो हमारे बड़े-बड़े अभिनेता हैं, उनके बेटे-बेटियों को फिल्मों में आसानी से रोल मिल जाते हैं, जो हम-आप सपने में भी नहीं सोच सकते। हमने यह भी पाया है कि अच्छे और सफल डॉक्टरों, वकीलों के बच्चे अपने पिता की चलती प्रैक्टिस को विरासत में पा जाते हैं। फलस्वरूप हम अवसाद से घिर जाते हैं। हम इस चीज पर यकीन करने लग जाते हैं कि सफलता उन्हीं कुछ लोगों को मिलती है, जो संपन्न या सही घर में पैदा हुए हैं। यदि आप भी ऐसा सोचते हैं तो दुबारा सोचिए।

आप दूसरी पीढ़ी पर ध्यान देने के बजाय पहली पीढ़ी के बारे में सोचिए—क्या पहली पीढ़ी से कोई शख्स बिलकुल नीचे से उठकर अपनी मेहनत और प्रतिभा के बलबूते पर एक सफल राजनीतिज्ञ नहीं बना? इसके पहले कि उसका बेटा इसका लाभ उठा सके। यही चीज सफल डॉक्टरों, वकीलों, अभिनेताओं, व्यापारी, प्रशासनिक अधिकारी, कलाकारों और अन्य लोगों पर भी लागू होती है। यह सही है कि हर आदमी को दूसरी पीढ़ी होने का सौभाग्य नहीं मिलता, पर किसी को आप पहली पीढ़ी का होने से तो नहीं रोक सकते। यह याद रखें कि इसके पहले कि दूसरी पीढ़ी, तीसरी या चौथी पीढ़ी होती, कभी एक पहली पीढ़ी भी थी। प्रत्येक राजवंश की नींव किसी साधारण आदमी द्वारा रखी गई थी, जिसको यह विश्वास था कि वह राजा बन सकता है। आप इतिहास पर नजर डालें तो पाएँगे कि मौर्यों से लेकर दिल्ली सल्तनत और मुगल वंश तक हर राजवंश की एक साधारण शुरुआत थी। वे सब महान् बने और फिर सबका पतन हुआ। पहली पीढ़ी के भावी शासकों को काफी परेशानियाँ उठानी पड़ीं—उस जगह पहुँचने के लिए, जहाँ से दूसरी-तीसरी पीढ़ी के लोगों की शुरुआत होती है। पर उसका फायदा भी है। उनकी जो उपलब्धियाँ थीं, वह उसकी अपनी थीं और उन्हें उन्होंने अपने बलबूते पर अर्जित किया था। उन्हें आशाओं व उम्मीदों का बोझ नहीं ढोना पड़ा था। उन्हें उन चीजों को आगे नहीं बढ़ाना है, जिनकी शुरुआत उनके पिता ने की थी। पहली पीढ़ी का व्यक्ति अपना व्यवसाय अपने आप चुन सकता है। और यदि किसी संयोगवश दूसरी व तीसरी पीढ़ी पतन की ओर चल पड़ती है और लोग एक परिवर्तन की ओर देख रहे हैं तो उसके पास वास्तव में यह मौका है कि वह इस खालीपन या शून्यता को भर दे। यह मानी हुई बात है कि पहली पीढ़ी के लिए सफलता पाना बहुत सरल है; क्योंकि उसे पता है कि रस्सी और धागे में क्या फर्क है और नट-बोल्ट में क्या अंतर है। यह एक बहुत बड़ा फायदा है, जो दूसरी पीढ़ी को नहीं मिलता। जो पुरानी पीढ़ी का भार ढोते हैं, उन्हें अपने दोस्त चुनने की, सलाहकार चुनने की और विश्वासपात्र

चुनने की स्वतंत्रता काफी सीमित है। दूसरी ओर पहली पीढ़ी को इसकी पूरी आजादी है। उन्हें अपने से पहली पीढ़ी का कोई बोझ नहीं ढोना है। संसाधनों और सहयोगियों को ढूँढ़ने में कोई सीमा नहीं—पूरी आजादी है।

शुरुआत में ऊपर चढ़ना बहुत कठिन होता है, क्योंकि नीचे तमाम लोग ऊपर चढ़ने के लिए कोशिश कर रहे हैं और हो-हल्ला मचा रहे हैं। पर यदि आपने शुरू की तीन-चार सीढ़ियाँ किसी तरह चढ़ ली हैं तो फिर आगे की चढ़ाई थोड़ी आसान हो जाती है। इसके तमाम उदाहरण हैं। एक मिसाल, जो मैं आपके सामने पेश करना चाहूँगा, वह है डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की, जो बचपन में रेलवे प्लेटफॉर्म पर अखबार बेचते थे। ऐसे तमाम उदाहरण भरे पड़े हैं, पर मैं उनकी सूची यहाँ पेश नहीं करना चाहता। ऐसी सूची लगभग हर प्रेरणादायक पुस्तक में मिल जाएगी। मेरा कहने का मतलब है कि किसी की कमजोर पारिवारिक पृष्ठभूमि उसकी असफलता का कारण नहीं बन सकती, जैसे कि अच्छी पारिवारिक पृष्ठभूमि सफलता की गारंटी नहीं है।

धन या प्रशिक्षण की कमी

यह दूसरा सवाल है, जो अकसर उठाया जाता है—"मैं ऐसी जगह में रहता हूँ, जहाँ पर मेरे क्षेत्र की कोचिंग की समुचित व्यवस्था नहीं है। या मेरे अभिभावक इतने अमीर नहीं हैं कि कोचिंग के लिए भारी-भरकम फीस भर सकें। मैं टेनिस खेलना चाहता हूँ, पर इस शहर में टेनिस-कोर्ट नहीं है। मैं एक अभिनेता बनना चाहता हूँ, पर...।" किसी भी क्षेत्र में विद्यार्थियों द्वारा इस तरह के तमाम कारण अकसर बताए जाते हैं। कोचिंग का आजकल बहुत बोलबाला है। यह किसी के कैरियर में सफलता के लिए रामबाण दवा मानी जाती है। यह ऐसी चाभी मानी जाती है, जिससे सारे ताले खुल जाएँगे। मैं एक सही कोच की जरूरत के महत्त्व को किसी प्रत्याशी के लिए कम नहीं करना चाहता हूँ, पर ऊपर बताए गए कारण उन लोगों द्वारा बताए जाते हैं, जो पूरे दिल से या मन से अपने क्षेत्र में प्रयास नहीं कर रहे हैं। मैं आपके सामने अपनी ही मिसाल पेश करना चाहूँगा। मैंने सिविल सर्विस की तैयारी की थी। मैं प्राणिशास्त्र और वनस्पति विज्ञान के साथ कंपटीशन में बैठा। जब मैंने कंपटीशन की तैयारी करनी शुरू करी तो लखनऊ में इन विषयों में कोचिंग का इंतजाम नहीं था। मुझे पता नहीं था कि कौन सी किताबें पढ़ूँ, क्या याद करूँ और किस प्रकार से प्रश्नों का उत्तर लिखूँ? (अतएव पुराने तर्कों द्वारा मुझे फेल हो जाना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ।) मैंने इस समस्या का सामना करने की ठानी। एक कंपटीशन वाली मैगजीन में मैंने डॉ. हिमानी पांडे का, जिन्होंने इन्हीं विषयों को लेकर सिविल सर्विस परीक्षा में अच्छी रैंक पाई थी, उनका इंटरव्यू पढ़ा। इस इंटरव्यू में उन्होंने उन किताबों

और लेखकों के नामों का उल्लेख किया था, जिसे उन्होंने प्रतियोगिता की पढ़ाई के लिए पढ़ा था। मैं तुरंत ही अपने स्थानीय पुस्तक विक्रेता के पास गया और उन किताबों को मँगाने के लिए आदेश दे दिया।

जब वे किताबें आईं तो उन्हें देखने से ही पता चल गया कि जो किताबें मैं पढ़ रहा था उनमें और इन किताबों में जमीन-आसमान का अंतर था। यह नई किताबें कहीं अधिक उच्च कोटि की थीं। मैंने उन किताबों से पढ़ा और लिखित परीक्षा में सफल रहा। पर मैंने लिखित परीक्षा में बहुत अच्छा नहीं किया था, अतएव इंटरव्यू के बाद सफल अभ्यार्थियों की सूची से मेरा नाम गायब था। मेरे समझ में नहीं आ रहा था, मैं क्या करूँ! मैंने कड़ी मेहनत की थी, अपनी तरफ से बढ़िया किया था, फिर भी फेल हो गया। क्या मैं वाकई में फेल हो गया था? मैंने इसको दूसरे दृष्टिकोण से देखना शुरू किया। उस साल लगभग 3 लाख लोगों ने प्रतियोगिता में हिस्सा लिया था। इसमें से 5,000 लोगों ने प्रिलिमनरी परीक्षा में सफलता पाई थी और उसमें से 600 लोगों को मेन परीक्षा में सफल होने के बाद साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था।

इसका मतलब हुआ कि ३ लाख लोगों में से मैं उन 600 लोगों में था, जिन्हें इंटरव्यू के लिए बुलाया गया था। अचानक ही असफलता की भावना की जगह 'सफलता' की भावना से भर गया। मैंने एक बार और परीक्षा देने का फैसला किया। पर उससे पहले मैंने अपनी मार्कशीट (अंक तालिका) का विश्लेषण किया।

विश्लेषण के बाद मैंने पाया कि अपने विषय के सारे पेपरों में मुझे आशा से कम अंक मिले थे, जबकि एक अन्य पेपर, जिसमें मैंने बहुत अच्छा नहीं किया था, उसमें बहुत अच्छे अंक मिले थे। मैंने बैठकर फिर से एक बार प्रश्नपत्र पढ़ा और यह विश्लेषण करने की कोशिश कि मैंने किन प्रश्नों का उत्तर दिया था और कैसे। मैंने पाया कि उस विशेष पेपर में मैंने ऐसे प्रश्न चुने थे, जिनके कई भाग थे और मैंने उत्तर देते समय उसमें चित्र भी बनाए थे। पशुओं में जो Structural-Functional Linkage था (उनके शरीर की संरचना और उनके काम में संबंध) उसको साफ-साफ दरशाया था। वही उसकी कुंजी थी। अगले प्रयास में मैंने वही चीज ध्यान में रखी और तीन प्रतियोगिताएँ, जिनमें मैंने भाग लिया था —इंडियन फॉरेस्ट सर्विसेज, सिविल सर्विसेज और प्रांतीय सिविल सर्विसेज में कामयाब रहा। मैंने इस मामले में अपने यूनिवर्सिटी प्रोफेसर्स की भी मदद ली थी। कुछ लोग तो मदद करने के लिए उत्सुक थे, कुछ लोग इतने इच्छुक नहीं थे। पर कोई भी बिलकुल मना कर दे, ऐसा नहीं था। उनके महत्त्वपूर्ण सुझाव मेरे लिए बहुमूल्य साबित हुए और मैंने बेहतर अंक पाए।

जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूँ, वह यह कि 'कोचिंग' शब्द के अर्थ को बिगाड़ दिया गया है और उसे अब क्लास-रूम कोचिंग समझा जाने लगा है। यह एक गलत धारणा है। वस्तुस्थिति यह है कि कोचिंग कई तरह की हो सकती है। वह क्लास-रूम टाइप की हो सकती है या फिर डिस्टेंस लर्निंग (दूर से सिखाई जानेवाली) यह लगातार चलनेवाली हो सकती है या थोड़ी देर रुक-रुककर, लेक्चर द्वारा या सवाल हल करने की टाइप में। चुनौती इस बात की नहीं है कि आप सही 'कोचिंग' (संस्थान) ढूँढ़ें, बल्कि यह कि आप सही 'कोच' (गुरु) ढूँढ़ पाएँ। मैंने ऊपर कुछ विकल्पों का उल्लेख किया है। पर एक प्रेरित प्रत्याशी के लिए सही किताबें, पत्रिकाएँ, शिक्षक और स्वयं आत्म-विश्लेषण भी 'कोच' का काम करते हैं। प्रिंट मीडिया, कंप्यूटर, ऑडियो-विजुअल सहायता, टी.वी. और इंटरनेट भी हमें तमाम तरह की सुविधाएँ प्रदान करते हैं और सूचनाओं की बमबारी करते हैं।

इनमें से प्रत्येक का प्रयोग हम अपने लक्ष्य-प्राप्ति में सफलता के लिए कर सकते हैं। मुख्य बात यह है कि आप इन संसाधनों का इस्तेमाल कैसे करते हैं! आजकल के युग में मीडिया एक दुधारी तलवार है। यह आपका कैरियर बना सकती है या बिगाड़ सकती है। यह इस पर निर्भर है कि आप इसका कैसे इस्तेमाल करते हैं!

यदि आप किसी ऐसी अलग-अलग जगह में हैं, जहाँ ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं तो फिर आपको उचित मार्गदर्शन के लिए वहाँ जाना चाहिए, जहाँ ऐसी सुविधाएँ हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कठिन और कष्टदायी मार्ग है। पर किसने ऐसा कहा है कि सफलता का रास्ता बहुत सुगम और आरामदेह है? (चाणक्य ने भी कि कहा है विद्या की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति को घर का मोह छोड़ देना चाहिए।) याद रखें कि आप वचनबद्ध हैं। जब आप इस प्रकार की किसी दुविधा में पड़े तो फिर आप निम्न परिस्थिति पर गौर करें—

मान लीजिए, आप किसी को बहुत प्रेम करते हैं। आप वचनबद्ध हैं। आप उस व्यक्ति के बिना रह नहीं सकते। आप उससे विवाह करना चाहते हैं। पर आपके परिवार का हर सदस्य उसके (शादी के) खिलाफ है। अब आप क्या करेंगे? क्या आप उस 'संबंध' से अलग कट जाएँगे, यह कहकर कि आप अपना वचन नहीं निभा सकते, क्योंकि रास्ते में बहुत सारी बाधाएँ हैं? या आप उन बाधाओं को दूर करने के लिए भरसक प्रयास करेंगे? संभावना है कि आप अपनी शक्ति भर पूरी कोशिश करेंगे। यहाँ तक कि आप अपने प्राणों का जोखिम भी उठाएँगे, ताकि आप उस स्त्री/पुरुष के साथ रह सकें, जिसे आप सच्चा प्यार करते हैं। अब आप इस स्थिति को अपने कैरियर और सफलता से बदल लीजिए। उत्तर बिलकुल स्पष्ट है।

इसका दूसरा पहलू बिलकुल अलग है। यदि आप इसे यूँ ही नहीं छोड़ देते तो आप उन विघ्न-बाधाओं को हटाने की कोशिश करेंगे। आप अपने नजदीक-से-नजदीक वह जगह खोजेंगे, जहाँ आपको अपने लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उचित मार्गदर्शन मिल सके—चाहे वह अध्ययन हो, खेल-कूद हो या कला-संगीत हो। यदि जरूरी होगा तो आप अपनी जगह बदल लेंगे। धन की कमी आपके लिए रुकावट नहीं पैदा करेगी। आप किसी छात्रवृत्ति या अनुदान के लिए चेष्टा करेंगे। यदि ऐसी कोई स्कॉलरशिप नहीं मिल सकती तो आप अपने दोस्त या बैंक से उधार लेंगे। यदि यह भी संभव नहीं है तो आप शाम को कहीं काम करके धनार्जन करेंगे और दिन में अपने लक्ष्य के लिए काम करेंगे। आप अपने खाने-पीने, सोने और आराम करने में मितव्ययिता करेंगे। और अंत में आप विजयी होंगे।

बेशक यह पीड़ादायक होगा। समय लेगा। अन्य लोग, जो संपन्न हैं, वे शायद यह काम एक-दो साल पहले कर ले जाएँ। पर जीवन केवल एक-दो साल नहीं है। लंबे समय में आप एक बेहतर कैंडीडेट होंगे। अपने अंदर समस्याओं का हल ढूँढ़ने में, उसका स्वतंत्र रूप से समाधान कर सकने की क्षमता का विकास कर लेंगे। आपने गड्ढे की तलहटी देख ली होगी और अब अपनी यथाशक्ति कोशिश करेंगे कि दुबारा गड्ढे में न गिरें। जैसे कि एक बॉडी-बिल्डर जिम्नैजियम में कड़ी ट्रेनिंग लेने के बाद एक सुंदर व गठी हुई बॉडी लेकर बाहर निकलता है, वैसे ही आप अपने अभ्यास और कोशिशों को एक अच्छी तरह तराशी हुई बुद्धि और आत्मा के साथ तैयार होकर निकलेंगे दुनिया की हर चुनौती, जो आपके सामने आएगी, उसका सामना/समाधान करने के लिए, और एक ऐसी मशीन की तरह, जिसमें अच्छी तरह तेल पड़ा है, उन सब अवसरों का लाभ उठाने के लिए जो आपके समक्ष आएँगे।

बहुत बढ़िया भाषण, मि.बंसल, पर क्या आपने यह अपने ऊपर आजमाया है? मेरा उत्तर 'ना' है। मैं एक ऐसे परिवार में नहीं पैदा हुआ था, जहाँ मुझे यह सब दिक्कतें पेश आतीं, जो मैंने ऊपर बताई हैं। पर मेरी अपनी समस्याएँ थीं, जिसमें से मैंने ऊपर एक का उल्लेख किया है। हो सकता है कि आपकी समस्या मेरी समस्या से कहीं बड़ी हो! पर इसमें केवल डिग्री का फर्क होता है। वास्तविकता यह है कि समस्या हमेशा समस्या होती है। यदि हम उस समस्या को सुलझाने की, हल करने की कोशिश नहीं करेंगे तो वह हमेशा ऐसे पहाड़ की तरह रहेगी, जिस पर हम कभी चढ़ नहीं पाएँगे या उसके उस पार नहीं जा पाएँगे। हर समस्या हल की जा सकती है, यदि हम उसका सामना करने की कोशिश करें और उसका पार पाने की कोशिश करें।

कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि हमें अपने छुट्टी के गंतव्य स्थान पर पहुँचने के लिए किसी साधारण गाड़ी में थर्ड-क्लास में सफर करना पड़े। आप इस तकलीफ को सह लेते हैं, क्योंकि आपको पता है कि जब आप वहाँ पहुँच जाएँगे तो उस जगह की मनोरमता, सुंदर दृश्य, सुखद जलवायु आपकी सारी थकान को हर लेगी। फिर आपने जो कष्ट यात्रा में उठाया था, उस सबको भूल जाएँगे।

धन, पारिवारिक पृष्ठभूमि, कोचिंग आदि संसाधनों का होना और ध्यान न लगना

निस्संदेह यह एक कठिन परिस्थिति है। मैं इसका सामना एक विद्यार्थी के दृष्टिकोण से करूँगा। पर यह संदेश खिलाड़ियों और कलाकारों आदि सब पर लागू होता है। ठीक ऐसी ही समस्या का मैंने भी सामना किया था। मैं पुलिस अधिकारी के घर पैदा हुआ था और एक अच्छे शहर में पला-बढ़ा। मैं मूर्ख या मंदबुद्धि भी नहीं था। फिर भी मैं फेल हो गया था। मैं अपनी पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान नहीं लगा पाता था। मैं बार-बार फेल हो रहा था। मुझे अपने हाई स्कूल से निकाल दिया गया था, क्योंकि बार-बार मेरे ग्रेड्स अच्छे नहीं आ रहे थे और मैं बार-बार मेडिसिन व कानून की पढ़ाई के लिए जो प्रवेश परीक्षा होती थी, उसमें भी फेल हो रहा था। मैं गर्त में गिर गया था और मुझे प्रतीत हो रहा था कि मैं कुछ भी नहीं बन पाऊँगा। ऐसा नहीं था कि मुझे पता नहीं था कि मुझे कड़ी मेहनत करनी है, पर मैं अपनी स्टडी टेबल पर ज्यादा समय नहीं बिता पाता था। एक बार जब मैं पढ़ने में ध्यान लगाने की कोशिश कर रहा था, मेरे मन में एक विचार आया। यह वही विचार था जिसने मेरा जीवन बदल दिया। शायद यह आपकी भी मदद करे!

आपके माता-पिता हैं, वे आपको वित्तीय रूप से सहारा देने के लिए तैयार हैं। आप एक अच्छे घर में और अच्छे शहर में रहते हैं। आपके पास अपना कमरा है, जिसमें फोन लगा है और ए.सी. भी है। आपको कपड़े धुलवाने की और रूम-सर्विस (यानी खाने-पीने का सामान कमरे में ही मिल जाए) की सुविधा है, चूँकि घर में तमाम नौकर-चाकर हैं। आप इतने भाग्यशाली हैं कि आपके पास कार या बाइक है और कमरे में इंटरनेट की सुविधा भी है। इस सबके ऊपर आपको माता-पिता से मासिक भत्ता भी मिलता है और आप गर्ल-फ्रेंड भी रख सकते हैं। संक्षेप में, आप एक बहुत आरामदेह और प्रसन्नतापूर्ण जीवन जी रहे हैं। जहाँ आपका समय किसी और की इच्छा पर निर्भर न होकर आप पर ही निर्भर है कि आप उसका कैसे सदुपयोग करते हैं! पर फिर भी आप 18 घंटे जो जागते हैं,

उसमें से 8 घंटे भी अपने पढ़ने-लिखने पर नहीं लगा पाते हैं। आप ऐसा करना चाहते हैं—पर कर नहीं पाते हैं।

यदि आपकी यही स्थिति है तो आप इस बात पर थोड़ी देर गौर करें। आप एक कागज-कलम लें और जो सुविधाएँ आपको अपने पिता द्वारा मुफ्त में मुहैया कराई गई हैं, उन्हें नोट कर लें। अब आप उनके सामने वह राशि लिखें, जिसमें यह सुविधा प्राप्त की जा रही है। इस तरह से आपको पता चल जाएगा कि आपके ऊपर आपके अभिभावक कितना खर्च कर रहे हैं। किसी भी अच्छे भारतीय शहर में इन तमाम सुविधाओं का मूल्य एक व्यक्ति के लिए लगभग 10-12 हजार रुपए होगा। अब इस समीकरण से आप पिता को हटा दीजिए। अब क्या होता है? आप एकदम से अकेले रह जाते हैं। यदि पिता नहीं होते तो यह सब पैसा/रुपया आपको स्वयं कमाना पड़ता—अपने वर्तमान 'स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग' या रहन-सहन के तरीकों को केवल बरकरार रखने के लिए।

अब आप कुछ क्षण के लिए मान लें कि आपको यह धन स्वयं अर्जित करना है। इस तरह का वेतन देने के लिए एक मालिक आपसे कितनी देर काम करने की अपेक्षा करेगा? मैंने यह प्रश्न कई स्टूडेंट्स से पूछा और उन्होंने जो संख्या बताई, वह थी—कम-से-कम 8 घंटे प्रतिदिन। इस संख्या को सही मानते हुए अब हम आगे बढ़ते हैं।

अब स्थिति यह है कि अपने वर्तमान जीवन-स्तर के मापदंड के अनुसार आपको उस संस्था या ऑफिस के लिए दिन में कम-से-कम 8 घंटे काम करना पड़ेगा। यह भी याद रखें कि यह समय बढ़ सकता है, क्योंकि उसके पास ज्यादा काम है और उसे एक सीमित समय में करना है।

तात्पर्य यह कि आपका इस समय पर कोई नियंत्रण नहीं है। इस प्रकार से समय के उपयोग पर आपके पास कोई लचीलापन नहीं है। इसके अलावा जब आप काम नहीं कर रहे हैं, तब भी आपके ऊपर जिम्मेदारी है। डेड-लाइन है और अधूरे काम की चिंता है, जिससे आपके दिमाग में खलल है। जिस वक्त आप काम नहीं कर रहे होते तो भी ये सवाल आपके मन में दौड़ते रहते हैं। इससे काफी हद तक आपके मन की शांति भंग हो जाती है। क्या इस तरह से आप हमेशा चलते रह सकते हैं?

इसमें भी एक पेंच है। आपकी वर्तमान योग्यता के अनुसार आपकी भविष्य में बढ़त संभव नहीं है। यदि आपको इस सीढ़ी पर ऊपर चढ़ना है तो आपको खींचतान करके अपने पढ़ाई के लिए समय निकालना पड़ेगा, ताकि आप उस महत्त्वपूर्ण परीक्षा के लिए तैयारी कर सकें, जिससे आपको किसी अच्छे संस्थान

में दाखिला मिल जाए और जहाँ पर पढ़ाई करके तथा डिग्री हासिल करके आप अपने कैरियर में उन्नति कर सकें।

यदि आपके पिता आपको वित्तीय सहारा नहीं दे रहे होते तो आपको रोजमर्रा के कई काम स्वयं करने पड़ते, जिससे आपके बहुमूल्य समय पर और दबाव पड़ता। अतएव, यदि आपको जीवन में कुछ बनना है तो आपको और अधिक वचनबद्धता चाहिए। आपको ज्यादा मेहनत भी करनी पड़ेगी और अधिक दक्ष भी होना पड़ेगा। यह सब बहुत अंधकारमय लगता है, है ना? बेशक यह ऐसा ही है। अभी मैंने इसमें कभी-कभी होने वाली बीमारी-अजारी और उस पर होनेवाला खर्च नहीं जोड़ा है। और भी समस्याएँ, जैसे समय पर आयकर रिटर्न भरना और अपने सुनहरे भविष्य के लिए जो आपको निवेश करने हैं तथा जो समय आपको अपनी गर्ल-फ्रैंड को खुश रखने के लिए निकालना है—इन सबका खर्च भी जोड़ लीजिए। क्या यह स्थिति अब पहले से बदतर लगती है? यदि आपको ऐसा लगता है तो आप अपनी वर्तमान लाइफ-स्टाइल निश्चय ही ऊपर किए गए चित्रण से कहीं बेहतर है। पर क्या यह हमेशा ऐसी ही रहेगी? हो सकता है, पर ऐसा है नहीं।

कड़वा सच तो यह है कि आपके पिता हमेशा तो रहेंगे नहीं। एक ऐसा समय आएगा, जब आप अकेले रह जाएँगे और आपको स्वयं अपनी रोजी-रोटी का प्रबंध करना पड़ेगा—चाहे आप इसे पसंद करें या न करें। इस कहानी से आपको क्या शिक्षा मिलती है? यह साफ है, है ना? यहाँ पर कोई फ्री-लंच नहीं है। (मुफ्त में आपको बैठे-बिठाए खाना नहीं मिल जाएगा।) आप जिन सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं, उनका कोई दाम अदा कर रहा है। उस पर अभी भी धन व्यय हो रहा है। इस बात केवल यह अर्थ है कि आप यह पैसे नहीं खर्च कर रहे हैं। यह एक प्रकार का उधार है, जो आप डैड से ले रहे हैं। आपको एक मौका मिल रहा है। 10-12 हजार रुपए आपके पिता आपके ऊपर खर्च कर रहे हैं। यदि यह वेतन आपको आपका बॉस दे रहा होता तो वह इसके बदले आपका खून चूस लेता। पिता आखिर पिता हैं, जो बदले में आपसे कुछ नहीं माँगते (पर आशा तो रखते ही हैं कि आप पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़े हों।)

वे आपको एक बॉस की तरह जॉब से (घर से) तो निकाल नहीं सकते। आप इस तरह से झूठी सुरक्षा की भावना से भर जाते हैं। यह छलावा इसलिए है क्योंकि यह सुरक्षा स्थायी नहीं है। पिता के साथ-साथ यह भी एक दिन चली जाएगी। यह वह दिन होगा, जब इस समय और धन का लेखा-जोखा दुनियावालों द्वारा लिया जाएगा। यह वह दिन होगा, जब आप पछताएँगे कि मैंने व्यर्थ ही समय, धन और मौका गँवा दिया। पर सत्य यह है कि दोनों में से कोई चीज वापस आनेवाली नहीं है।

तो अब आप क्या करेंगे? आप आज से एक सैलरी (वेतन) बुक रखेंगे। आपको प्रतिमाह 12 हजार रुपए तक की सुविधाएँ वेतन के रूप में मिलती हैं और इसके बदले आपको सप्ताह में प्रतिदिन कम-से-कम 8 घंटे काम करना है। आप चाहें तो हफ्ते में एक दिन अवकाश भी ले सकते हैं। बहुत ज्यादा तो नहीं है, है न? कम-से-कम इतना काम तो हर एंप्लॉयर (मालिक) आपसे उम्मीद करता है कि आप करेंगे ही। और इसका उज्ज्वल पक्ष यह है कि यह सब आपकी बेहतरी के लिए है, न कि आपके मालिक (डैड की) की आय बढ़ाने के लिए। आपके अपने भविष्य को बेहतर बनाने के लिए यह एक नायाब तोहफा है।

इसी नजरिए ने मेरे जीवन को बदल दिया। मैंने अपने कमरे को एक ऑफिस की तरह सजाया—टेबल-चेयर, टेबल-लैंप, एक आगंतुक कुरसी, बुक-शेल्फ आदि से...। मैंने कल्पना की कि मैं रोज अपने ऑफिस 9 बजे सुबह पहुँचूँगा और 6 बजे शाम तक आधे घंटे लंच ब्रेक के साथ काम करूँगा। और फिर 6 बजे शाम के बाद मैं अपने कमरे से बाहर निकल जाऊँगा—एक छोटी सी सैर के लिए। फिर थोड़ी देर टी.वी. पर कोई प्रोग्राम देखना। रात के भोजन के बाद फिर एक घंटे काम करना, जिससे कि पुराना इकट्ठा काम कुछ कम हो सके। टारगेट (लक्ष्य) तय किए गए और एक प्रोजेक्ट की तरह काम किया, क्योंकि समय सीमित था।

अचानक ध्यान लगाना कोई समस्या नहीं थी। जैसे-जैसे मैं अपने काम में डूबता गया, मैंने पाया कि मैं अपने साथियों से काफी पीछे चल रहा था। मैंने पहले ही बहुत समय व्यर्थ गँवा दिया था, इसलिए मैं अपने मित्रों के बनिस्पत काफी नुकसान की स्थिति में था। मैंने सोचा कि यदि मुझे उनके बराबर आना है तो मुझे ज्यादा घंटे काम करना पड़ेगा।

अब मुझे पढ़ने के लिए अपने माँ-बाप की झिड़कियों की जरूरत नहीं थी। अब तो स्थिति बदल गई थी या उलट गई थी और उन्हें समय-समय पर मुझे आराम के लिए कहना पड़ता था। इस नियमित रुटीन से अध्ययन और आराम के बीच में मेरा एक तालमेल बैठ गया था और मैं अपने लक्ष्य की ओर बिना किसी गलती के अग्रसर हो रहा था, जोकि अंततोगत्वा मुझे मिल ही गया।

आप भी ऐसा ही कर सकते हैं, चाहे आप जिस क्षेत्र में काम कर रहे हों। शैतान को भी उसका श्रेय, जितना बनता है, दीजिए। आज आपको उधार मिल रहा है, कल आपको सूद समेत चुकाना पड़ेगा। उसके लिए आपको अभी, इसी वक्त से तैयारी शुरु करनी पड़ेगी।

पढ़ाई का सही तरीका—अध्ययन कैसे किया जाए? यदि आपकी यह समस्या है तो इसके भी कई नियम हैं, जिनका आप अनुसरण कर सकते हैं—

• **पढ़ाई मेज-कुरसी पर बैठकर की जाती है, न कि बिस्तर में लेटकर/ बैठकर**—हममें से कुछ लोगों की आदत है कि बिस्तर में लेटकर या सोफे में बैठकर पढ़ते हैं और साथ में गाने भी सुनते हैं (रेडियो आदि से) और बीच-बीच में फोन की घंटी भी बजने लगती है। अब आप इसके बारे में जरा सोचिए! अध्ययन भी एक तरह का काम है। अधिकतर मैनेजर और प्रोफेशनल (पेशेवर) लोग अपने काम के दौरान काफी पढ़ाई करते हैं। पर क्या आपने किसी इंजीनियर, डॉक्टर या अफसर को बेड पर या सोफा पर बैठकर काम करते देखा है? अधिकांशतः नहीं। प्रत्येक दफ्तर में आप पाएँगे कि एक साफ-सुथरा वर्क-स्टेशन होता है। जहाँ पर खासतौर पर एक टेबल-कुरसी है और सही रोशनी होती है। एक सोफा या बिस्तर का प्रयोग अध्ययन के लिए करना अपने आपको नष्ट करनेवाला हो सकता है। इसका एक कारण होता है। यदि सबसे बढ़िया और सफल लोग बेड का प्रयोग अपने वर्क-स्टेशन की तरह नहीं करते हैं तो यह किसी कारणवश होगा। कारण बहुत सीदा-सादा है। बेड हमारे आराम करने के लिए बनाई गई है और वहाँ लेटने-बैठने से आपको नींद आने लगेगी। वह आपको चैतन्य नहीं रखती। आप उतना ही समय लगाते हैं, पर आपको उसका उतना फायदा नहीं मिलता जितना मिलना चाहिए। अगर आप मुझ पर भरोसा नहीं करते तो कुछ दिनों के लिए मेज-कुरसी पर पढ़कर देखिए, आपको फर्क स्वयं पता चल जाएगा।

• **शांत वातावरण में अच्छी पढ़ाई होती है**—हम सभी लोग संगीत का लुत्फ उठाते हैं, पर जब हम कोई गंभीर काम कर रहे हों तो बेहतर होगा, हम इससे बचे रहें। हमारा दिमाग जिस तरह से बना है, किसी काम में ध्यान लगाना बहुत ही कठिन काम है। इसमें आप बैकग्राउंड में एक अच्छा सा गाना चला दें, फिर तो आपका ध्यान भटकना जरूरी ही है। हममें से ज्यादातर लोग यह मानकर चलते हैं कि यदि पीछे हलका-हलका मधुर संगीत चल रहा हो तो हमारा ध्यान काम करने में अच्छा लगता है। यदि ऐसा हो तो प्रत्येक कार ड्राइवर को यह राय दी जाएगी कि वह अपनी कार में अनिवार्य रूप से रेडियो या कैसेट-प्लेयर लगा ले।

वास्तव में एक ऐसा नियम बनाया जा सकता है। पर अनुसंधानों के अनुसार, यदि आप किसी चीज में ध्यान लगाना चाहते हैं तो संगीत से आपका ध्यान बँट सकता है। यदि आप संगीत का लुत्फ उठाना चाहते हैं तो काम के बाद अलग से मजा लीजिए। आधे घंटे का आपकी पसंद का संगीत आपको ज्यादा सुकून देगा, बजाय इसके कि आप दिन भर पार्श्व संगीत सुनते रहें। इसका एक और दृष्टिकोण है। यदि आप अपने सवाल हल करते समय संगीत का चलते रहना पसंद करते हैं तो मनोवैज्ञानिक इसे 'कंडीशंड रिस्पांस' कहते हैं। ऐसे में आप अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन तभी दे पाते हैं, जब पार्श्व संगीत चल रहा हो।

पर इसमें भी एक पेंच है। परीक्षा-भवन में तो ऐसी कोई संगीत-लहरी चल नहीं रही होगी। इसके विपरीत वहाँ पर पूर्ण शांति होगी। बेहतर प्रदर्शन के लिए आपको जो जरूरी स्पंदन चाहिए, वह नदारद रहेगा। फलस्वरूप आपके प्रदर्शन में कमी आ जाएगी, चाहे वह कितनी ही थोड़ी सी क्यों न हो। अतएव, कंपटीटिव परीक्षा में, जहाँ एक-एक नंबर की मारा-मारी रहती है, वहाँ पर यह गिरावट बहुत महँगी साबित हो सकती है। आपके लिए यह विनाशकारी भी हो सकती है।

मेरा कहने का मुद्दा यह है कि पढ़ने के वक्त आप 'फाइनल कंडीशंस' (अंतिम परिस्थितियों) का ध्यान रखें। एक खिलाड़ी एथलीट, जो ओलंपिक में मेडल जीतने के लिए प्रैक्टिस कर रहा होता है, वह उन कंडीशंस का ध्यान रखकर उसी तरह का ट्रैक बनाकर उस पर प्रैक्टिस करता है। कोई भी टेनिस का खिलाड़ी आपको बता देगा कि ग्रास (घास) कोर्ट और क्ले-कोर्ट में जमीन-आसमान का फर्क है। इसी प्रकार से यदि आप किसी परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे हैं तो पूर्ण शांति के साथ पढ़ें, न कि एक संगीतमय वातावरण में।

• **एक सिलेबस (कोर्स) के साथ पढ़ना प्रभावी होता है—**बिना किसी सिलेबस के पढ़ना वैसे ही है जैसे बिना किसी रूटमैप के कार चलाना। ऐसे में आप इधर-उधर चक्कर काटते रहेंगे। सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि सिलेबस की एक फोटोकॉपी करवाकर हमेशा अपने पास रखें, जिससे आपको पता रहे कि परीक्षा के लिए आपको क्या-क्या पढ़ना है। जैसे ही कोई टॉपिक आप पूरा कर लें, उस पर निशान लगा दें या काट दें कि यह हो गया है। इससे आपको हर वक्त पता रहता है कि आपने कितनी प्रगति कर ली है और आगे आपको कितना पढ़ना है। आपका पढ़ाई पर फोकस रहता है। यह एक तरह का 'रेडी रेकनर' (तुरंत गणना करनेवाला) आपके हाथ में रहता है, जिससे आप कितना समय किस विषय पर देना है, यह पता कर सकते हैं। यदि कोई सिलेबस नहीं है तो अपने आप बना लें कि आपको परीक्षा के लिए किस विषय में कौन से टॉपिक या सब-टॉपिक पढ़ने हैं और उसको समय-समय पर आप अपडेट करते रहें। इस तरह से आपको काफी बड़ा फायदा उन लोगों से अधिक मिल जाएगा, जो बिना किसी रूटमैप या सिलेबस के पढ़ते जा रहे हैं। क्योंकि ऐसा करना तो अँधेरे में तीर मारनेवाली बात हो गई।

• **योजनाबद्ध तरीके से काम करें—**जो छात्र परीक्षा में सफल हो जाते हैं, उनसे अकसर यह सवाल पूछा जाता है कि ''आप कितने घंटे रोज पढ़ते थे?'' यद्यपि इस सवाल में कुछ मेरिट है, पर यह सवाल अधूरा है। सही सवाल होगा कि ''आप कितने घंटे रोज अध्ययन करते थे और आपका आउटपुट क्या था?'' यह सवाल पहले सवाल से ज्यादा सटीक है। हो सकता है कि आप अपनी स्टडी-

टेबल पर 8 घंटे लगातार बैठे रहे हों, पर अपने कोर्स का एक भी टॉपिक या चैप्टर/अध्याय न पूरा कर पाए हों! ऐसे परिदृश्य में आपका मेज पर आठ घंटे पढ़ने बैठना आपको एक भ्रामक स्थिति में रखता है—ओहो, मैं तो आज लगातार 8 घंटे बैठकर पढ़ा, जबकि आपने सारा समय व्यर्थ गँवा दिया। इस तरह के एप्रोच से आपको अंत में सफलता नहीं मिलती और आप कहने लगते हैं कि सफलता तो भाग्य के हाथ में है, आप कुछ नहीं कर सकते।

जबकि यह सही है कि आपने अपने काम पर कई घंटे लगाए, पर यदि आप यह नहीं बता सकते कि उन घंटों में कितना पढ़ा, क्या याद किया और कितना कोर्स कवर किया तो यह मेहनत निरर्थक है। सही प्रभावशालिता तभी पता चलती है, जब उसके पास दक्षता भी हो। यह तथ्य कि आप अपना समय लक्ष्य-प्राप्ति की ओर लगा रहे हैं, यही आपका प्रभावी होना है। पर आपको यह तब तक मदद नहीं करता जब तक कि आप अपने काम में दक्ष न हों। 'दक्षता' का अर्थ है कि आप एक दिए हुए संसाधन से ज्यादा-से-ज्यादा उत्पादन करें। आपके केस में यह संसाधन 'टाइम' या समय है। आपको हर मिनट का हिसाब रखना है। यहाँ पर हम रुडयार्ड किपलिंग को उद्धृत करते हैं—

> ''यदि आप उस अक्षम्य मिनट को 60 सेकंड की दौड़ से भर सकते हैं।
>
> तो यह दुनिया आपकी है,
>
> और उसमें जो कुछ भी है/वह आपका है/और ऐसा करने से मेरे
>
> पुत्र/आप एक आदमी बन जाएँगे!''

उन्होंने टर्म 'अक्षम्य' बहुत सही अर्थ में प्रयोग किया है। समय बहुत ही 'अक्षम्य' रिसोर्स है और अत्यधिक सीमित भी। इसका (समय का) पूरी तरह से सदुपयोग करना चाहिए।

1 घंटे का काम 8 घंटे में करना और कुछ नहीं, समय की बरबादी है। यह बेहतर है कि 1 घंटे में जितना ज्यादा-से-ज्यादा काम कर सकें, करें और बाकी अन्य घंटे किसी अन्य कार्य में लगाएँ। समय का सबसे ज्यादा सदुपयोग करने के लिए आप दैनिक लक्ष्य तय कर लें कि दिन भर में आप कितना काम करेंगे। इससे आपकी कार्य-कुशलता बढ़ेगी। आपने जब किसी खास दिन का कुछ टारगेट रखा है, तभी तो आप भरसक कोशिश करेंगे उस लक्ष्य को पाने की। यदि आपका समय उस काम के लिए तय घंटों से ज्यादा लग रहा है तो फिर आप ज्यादा घंटे काम करके उस लक्ष्य को पूरा करें। इससे आपको बहुत ज्यादा

संतोष मिलेगा और आपको सही या चुनौतीपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करने में मदद मिलेगी, जिन्हें आप पूरा कर सकेंगे।

आप अपनी प्रगति को एक डेली-डायरी में नोट करते रहें। इस डायरी में आप अपनी रोजाना की प्रगति के अलावा और कोई चीज न नोट करें और जो लक्ष्य या जिस हद तक आपने लक्ष्य प्राप्त किया, वह भी लिखें। आप जब इस प्रकार का तरीका अपना लेंगे तो आपको लगेगा कि आप एक 'प्रोफेशनल' तरीके से काम कर रहे हैं और छात्र की तरह कम। इस तरीके से आपका अपने समय पर ज्यादा नियंत्रण रहेगा और उसका सही तरीके से इस्तेमाल आपके अंदर एक उपलब्धि की भावना तथा आत्मविश्वास भर देगा। अचानक इस तरह से आपको अपना काम भयावह कम और करने लायक ज्यादा लगेगा। अध्ययन के लिए योजनाबद्ध तरीके से काम करना ही सबसे अच्छा तरीका है, जो एक समयबद्ध तरीके से काम करने से कहीं बेहतर है।

• **उसी प्रकार की परिस्थितियों में काम करना**—परीक्षा अनुरूपी परिस्थितियों में काम करना—'सिम्युलेशन' या अनुरूपण का अर्थ होता है—उसी प्रकार की परिस्थितियों में दक्षता का अनुरूपण करना, जैसाकि वास्तविकता में होता है। अध्ययन के समय अपने अंतिम उद्देश्य का ध्यान रखना ही इस पूरी प्रक्रिया का फोकस या केंद्रबिंदु है। क्या आप किसी प्रतियोगी परीक्षा के लिए पढ़ रहे हैं? इस स्थिति में आपके सामने दो खास चुनौतियाँ हैं—एक तो समय की सीमा, दूसरी यह कि जो सवाल आप हल कर रहे हैं वे बिलकुल सही हों। जब भी आप टेस्ट-प्रैक्टिस कर रहे हैं तो आप उसी प्रकार की समय-सीमा और सही-सही जवाब देने का अभ्यास करिए, जैसाकि इम्तिहान के समय होता है। मान लें कि आपके टेस्ट में 150 मल्टीपल च्वॉयस प्रश्न हैं, जिन्हें आपको 120 मिनट या 2 घंटे में हल करना है। हम यह भी मानकर चलें कि आपको HB पेंसिल द्वारा OMR (ओ.एम.आर.) शीट पर उत्तर गोले में भरने हैं। इसका सबसे बढ़िया तरीका है कि आप स्टेशनरी की दुकान से ओ.एम.आर. शीट्स ले आएँ और उनकी बहुत सारी फोटोकॉपी कर लें। जब भी आप टेस्ट की प्रैक्टिस करें तो आप अपने को अकेले कमरे में बंद कर लें और उसे निर्धारित समय (120 मिनट) में करने का अभ्यास करें। घड़ी चलती रहेगी, चाहे आप जो भी काम करें। चाहे आप टॉयलेट जाएँ या एक गिलास पानी पीएँ, यह सभी इसी समय में, यानी 120 मिनट में शामिल होगा। याद रखें कि आपको कोई ब्रेक की अनुमति नहीं है।

यह टेकनीक आपको बताएगी कि आप असली परीक्षा के लिए कितने तैयार हैं! बाद में आप इस बात का विश्लेषण कर सकते हैं कि आप जो सवाल नहीं कर पाए थे, उनका सही जवाब क्या था और आपसे कहाँ चूक हुई। पर प्रैक्टिस-टेस्ट आप वैसे ही करेंगे जैसा इम्तिहान में वाकई में होता है। जब आप इस प्रकार से अभ्यास करेंगे तो आपका प्रदर्शन असली परीक्षा के ही लगभग बराबर होगा। उसी के साथ आप समय-सीमा का दबाव और जवाबों के सही होने का अभ्यास भी कर पाएँगे।

• **प्रैक्टिस, प्रैक्टिस, प्रैक्टिस**—एक पुरानी कहावत है—'करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान'। केवल पढ़ने से उस विषय में आप महारत तो हासिल

कर लेंगे, पर प्रतियोगिता में आगे रहने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। इसके लिए आपको परीक्षा के बारे में खूब अच्छी तरह, गहरा ज्ञान होना चाहिए कि परीक्षक क्या चाहता है? किस नजरिए से आप उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं? हमने पिछले हिस्से में एक तरह की परीक्षा के बारे में विचार प्रस्तुत किए हैं। तमाम और तरह के भी टेस्ट/परीक्षाएँ होती हैं। कुछ में कुछ भागों के अलग मार्क्स (अंक) होते हैं और समय भी नियत होता है। कुछ में अलग भागों में आपको कुछ सीमित शब्दों में अपना उत्तर लिखना होता है। आजकल तो ऑन-लाइन (कंप्यूटर) द्वारा परीक्षा होती है। आप जिस तरह की परीक्षा में भाग लेने जा रहे हैं, उसी प्रकार से उसके अनुरूप तैयारी करें। उसके बाद अपनी नियमित प्रैक्टिस करिए। उन्हीं परिस्थितियों में जितना आप प्रैक्टिस करेंगे उतना ही अपनी अंतिम परीक्षा में बेहतर परफॉर्मेंस करेंगे। किसी भी प्रकार की तैयारी, जिसमें इस तरह का अभ्यास शामिल नहीं है, आपको उस विषय में डॉक्टरेट तो दिला सकता है, पर कंपटीशन में शायद आप सफल न हो पाएँ।

• **भविष्य-निर्माण में मित्रों और दोस्ती का मूल्य**—यह एक आम अनुभव है कि जब एक आदमी अपने चुने हुए लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कमर कस लेता है और पूरी तरह से तैयारी में जुट जाता है तो उसको दोस्तों से मिलने का और मिलने-जुलने का समय कम से कमतर हो जाता है। इससे कभी-कभी आपसी मनमुटाव हो जाता है, आपस में दरार पड़ जाती है। आपके मित्र और जान-पहचानवालों को अपनी ओर तवज्जो या ध्यान चाहिए। जब आप उनको समय नहीं दे पाते तो उन्हें लगता है कि वे अलग छूट गए हैं या उनका तिरस्कार किया जा रहा है। हममें से कोई भी अपने मित्रों को खोना नहीं चाहता है। अतएव, हम परीक्षा की तैयारी के समय में से कटौती कर दोस्तों में वह समय लगाते हैं। पर अब सवाल उठता है कि क्या यह तरीका उचित है?

मेरा उत्तर है—बिलकुल नहीं। इसका सही तरीका यह है कि आपने दोस्तों के साथ एक कप कॉफी के साथ बैठकर उन्हें यह समझाने-बताने की कोशिश करें कि आप एक लक्ष्य-प्राप्ति के लिए तैयारी कर रहे हैं और यह आपके जीवन-मरण का सवाल है। उनको यह समझाने की चेष्टा करें कि आप अपने लक्ष्य के लिए कटिबद्ध हैं और वह आपके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्हें आप अपने पढ़ने या अध्ययन करने का समय बता दें और यह भी बता दें कि वे लोग किस वक्त मिलने-जुलने आ सकते हैं। उन्हें आप यह भी भली-भाँति बता दें कि वे लोग आपके पास हर समय नहीं आ सकते; क्योंकि यह आपके काम में बाधक है और हानिकारक भी है। अगर वे आपके सच्चे मित्र हैं तो वे आपकी बात समझेंगे और आपकी पढ़ाई में बाधा नहीं पहुँचाएँगे।

आपके लक्ष्यों और उसे पाने की उत्कट इच्छा उन्हें भी प्रिय होनी चाहिए और एक सच्चे मित्र के नाते उन्हें आपके काम में बाधा नहीं डालनी चाहिए। उनका रुख प्रोत्साहन देनेवाला और सहयोग करनेवाला होना चाहिए। एक ऐसा मित्र, जो अपनी खुशी के लिए आपका वक्त बरबाद करना चाहता है, वह सच्चा मित्र हो ही नहीं सकता। दरअसल वह आपका शत्रु है। ऐसे दोस्त स्वार्थी और लोभी होते हैं तथा आपके संसाधनों का प्रयोग अपने हित में करना चाहते हैं। आप स्मरण रखें, ऐसे लोग अपना समय बिलकुल भी व्यर्थ नहीं गँवाते हैं। वे लोग अपना काम खत्म करके ही आपके यहाँ धमक जाएँगे, ताकि आप उनके साथ फालतू की गप्पें मारें। आपके काम की उन्हें कोई परवाह नहीं है। यदि आप उनकी माँगों को पूरा नहीं करेंगे तो वे आपको भावनात्मक रूप से ब्लैकमेल करेंगे।

इस चीज को मैं एक उदाहरण द्वारा समझाऊँगा। मान लीजिए, आपका एक मित्र है, जिसकी भीड़-भाड़वाले एक बाजार में दुकान है। एक दिन जब मार्केट खुली है, आप इरादा बनाते हैं कि एक नई मूवी, जो अभी हाल में सिनेमा हॉलों में आई है, उसे देखा जाए। आप उस मित्र के पास जाते हैं और उसे अपने साथ शाम के समय पिक्चर देखने के लिए आमंत्रित करते हैं। इसके लिए उसे पैसे भी नहीं खर्च करने, आप ही टिकट खरीदेंगे।

आप उससे किस जवाब की अपेक्षा करते हैं? क्या आप सोचते हैं कि आपका दोस्त दुकान बंद करके आपके साथ चलने को राजी हो जाएगा? या आप सोचते हैं कि मना कर देगा? मेरे विचार से वह कहेगा, ''आपके साथ मूवी तो अवश्य चलता, पर उस वक्त दुकान बंद करके मैं आपके साथ नहीं जा सकता। मूवी तो कल ही हॉल पर आई है, हम लोग मूवी रविवार को क्यों नहीं चलते? रविवार को बाजार बंद रहता है...।'' आपको अच्छा मित्र मानते हुए वह आपसे आशा रखेगा कि आप उसकी बात को समझेंगे कि उसका समय बहुमूल्य है और किसी मार्केटवाले दिन दुकान बंद करके जाने से उसकी कमाई में नुकसान होगा। और एक अच्छे दोस्त की तरह आप यह बात समझ जाएँगे।

यदि यह सच है तो इसके विपरीत की स्थिति भी सच होगी। यदि आपके दोस्त का समय कीमती है (किसी तिथि या समय पर) तो आपका समय भी उतना ही कीमती है। अगर वह चाहता है कि यह बात आप समझें तो आपके मित्र को भी यह समझना चाहिए कि आपका समय भी आपके लिए उतना ही मायने रखता है—उतना ही कीमती है—और आप भी उसे किसी विशेष दिन या समय पर मिल नहीं सकते। उसे भी यह बात समझनी चाहिए कि आपके समय का मूल्य है और आप उसकी इच्छानुसार अपना समय उसे नहीं दे सकते। अंग्रेजी में

कहावत है—'टाइम इज मनी' (समय ही धन है)। यह सब पर बराबर लागू होता है। इसे आप गाँठ बाँधकर रखें।

यह सच है कि आपके इस नजरिए से आपके कई तथाकथित मित्र आपके रास्ते से जल्दी ही 'विदा' हो जाएँगे। उनके लिए दुःख मनाने के बजाय आपको शुक्रगुजार होना चाहिए। आपके मित्रों को आपकी सफलता और उसके प्रति आपकी चेष्टा की कोशिश को समझना चाहिए। ऐसे लोगों से बचना चाहिए, जिन्हें आपकी सफलता से कोई मतलब नहीं है, बस आपके साथ मौज-मस्ती करने भर में ही उनकी दिलचस्पी है। ऐसे दोस्तों से शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा पा लेना चाहिए।

• **सही प्रकार के दोस्तों का चुनाव कैसे करें—**मैंने एक कहावत पढ़ी थी, संभवतः चीनी, जो बहुत सीधी-सादी है—"कोई व्यक्ति जिसके बहुत सारे दोस्त हैं, उसका कोई भी दोस्त नहीं होता है।"

इस पर आप थोड़ी देर मंथन करें। जैसा कि जीवन में हर चीज के साथ है, गुणवत्ता का बहुत महत्त्व है। मान लीजिए कि हम आपसे कहें कि एक टोकरी सड़े-गले आम हैं और दूसरी में थोड़े से पर अच्छे आम हैं और उनमें से आपको एक चुनना है, तो आप कौन सी टोकरी चुनेंगे? जाहिर है कि आप थोड़े से आम पर अच्छेवाले चुनेंगे और सड़े आमोंवाली टोकरी को खारिज कर देंगे। यही बात रिश्तों के बारे में भी लागू होती है। यह जरूरी नहीं है कि सारा मोहल्ला या शहर आपका दोस्त हो। यदि आप सफल व्यक्ति बनना चाहते हैं तो कुछ चुने हुए पर गुणी दोस्त, जिन्हें आपके लक्ष्य और आपकी सीमाओं का पता हो और जो आपके साथ-साथ आपके समय की कद्र करना जानते हों, उन्हें चुनिए, न कि उन तमाम लोगों को, जो कि स्वार्थी हैं। अपनी खुशी और हितों का तो उन्हें हमेशा ध्यान रहता है, पर आपकी सफलता, लक्ष्यों और खुशी की उन्हें धेले भर भी परवाह नहीं। जब आपको ऐसे अच्छे और गुणी दोस्त मिल जाएँ तो उस दोस्ती को आप पनपने दें और आगे बढ़ाएँ। ये मित्र ही आपके असली दोस्त हैं और उन स्वार्थी दोस्तों से लाख गुना बेहतर हैं और उम्मीद है कि ऐसे मित्र आपसे ऐसी अपेक्षा नहीं करेंगे कि आप उनका जरूरत से ज्यादा स्वागत-सत्कार करें या समय बिताएँ।

नए दोस्त बनाते समय इस बात का ध्यान रखें कि उनका चरित्र बेदाग हो और उनके लक्ष्य भी वही हों, जो आपके हैं। ऐसे लोग बहुत कम हैं और उन्हें ढूँढ़ पाना कठिन है; पर ऐसे लोगों को आप खोजते रहें। ऐसे में आपकी प्राथमिकताएँ और उनकी प्राथमिकताएँ अलग-अलग नहीं होंगी और आप लोग आपस में अपने लक्ष्यों के प्रति विचारों और समय का आदान-प्रदान कर सकते हैं।

आप हमेशा इस बात का ध्यान रखें कि आप किन लोगों के साथ रहते हैं और घूमते-फिरते हैं, इस बात का बहुत महत्त्व है। इसका व्यक्तित्व पर बहुत सूक्ष्म पर धीरे-धीरे प्रभाव पड़ता है और काफी बाद में दृष्टिगोचर होता है, जब वह आपके ऊपर हावी होने लगता है। यह बिलकुल सही कहा गया है कि आदमी की पहचान इस बात से होती है कि वह कैसी संगति में रहता है।

• **समान लक्ष्योंवाले मित्रों में आपसी प्रतिस्पर्धा (कंपटीशन)**—मेरे विचार से अंग्रेजी के शब्दकोश में सबसे ज्यादा गलतफहमीवाला शब्द 'कंपटीशन' है। ज्यादातर यह नकारात्मक और स्वार्थपरक शब्द के रूप में समझा जाता है। बहुधा यह 'आलट्रइजम' (Altruism) या सर्वहितवाला के विपरीत अर्थवाला माना जाता है। दरअसल बहुत सारे विद्यार्थी यह समझते हैं कि उनकी सफलता दूसरे विद्यार्थियों की असफलता पर ज्यादा निर्भर करती है। आपके दिमाग में एक बार ऐसा विचार धारण कर ले या बैठ जाए तो फिर आपका विकास एक स्वार्थी और नकारात्मक सोचवाले इनसान के रूप में होती है, जोकि अंतिम लड़ाई (परीक्षा) के लिए ठीक से तैयार नहीं है। मैं अपनी इस बात को एक उदाहरण से समझाता हूँ—

मान लीजिए कि आप 50 छात्रों की क्लास में एक छात्र हैं। वह कंपटीशन, जिसके लिए सभी क्लास तैयारी कर रही है, उसमें बच्चों को सफल होने के लिए कम- से-कम 80 प्रतिशत अंक, सारे विषयों के अंक मिलाकर, चाहिए। समय-समय पर प्रैक्टिस टेस्ट होते हैं और आपको छोड़कर सभी छात्रों के अंक 60 प्रतिशत बार-बार आ रहे हैं। आप अकेले 75 प्रतिशत अंक ला रहे हैं। आपको अपने प्रदर्शन पर गर्व है और शेष छात्र आपसे ईर्ष्या करते हैं। आपको इस बात की बहुत खुशी होती है कि आप अन्य छात्रों से कहीं आगे हैं और कहीं-न-कहीं दिल में इस बात से संतोष होता है कि बाकी सब लोग आपसे काफी पीछे हैं, यद्यपि आप इस बात को खुल्लम-खुल्ला स्वीकार नहीं करेंगे। आप अपनी उपलब्धियों से इतने खुश हैं कि सुस्त पड़ जाते हैं। आप सब चीजें बहुत सहजता या आसानी से लेने लगते हैं। आप इस बात को नजरअंदाज कर देते हैं कि आपको प्रतियोगिता में सफल होने के लिए कम-से-कम 80 प्रतिशत अंक चाहिए। आप अपनी तैयारी से संतुष्ट होकर अंतिम परीक्षा में भाग लेते हैं। आप अच्छा पेपर करते हैं, पर केवल 79 प्रतिशत अंक आते हैं और आप फेल हो जाते हैं। इसके साथ ही क्लास के बाकी बच्चे भी फेल हो जाते हैं।

यह एक बहुत महान् गलती है, जो ज्यादातर विद्यार्थी करते हैं। यह गलती इसलिए होती है कि आप अपने को अपने साथियों के सामने रखकर देखते हैं। आप गलत 'बेंचमार्किंग' कर रहे हैं। और दूसरी यह बात कि यह गलती सर्वथा टाली जा सकती है।

किसी भी प्रतियोगिता की सही कुंजी है—उसकी ठीक से 'बेंचमार्किंग' (न्यूनतम प्रतिशत अंक, जो आपको चाहिए)। आपको यह समझना चाहिए कि जहाँ तक कंपटीशन का सवाल है, उसमें आपके मित्रों की भूमिका नगण्य है। आप उनपर ध्यान देने के बजाय अपने ऊपर ध्यान केंद्रित करें। आप उनसे ज्यादा नंबर लाने के बजाय परीक्षा के मापदंड को ध्यान रखकर 'बेंचमार्किंग' करें। इसका सबसे आसान तरीका है कि 100 प्रतिशत के लिए प्रयास करें। तब किसी के लिए आपको फेल करना असंभव होगा। वही आपका लक्ष्य होना चाहिए।

आपको इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि परीक्षा में क्या ट्रेंड चल रहा है और कम-से-कम कितने प्रतिशत अंक पाकर आप अगले राउंड (मेन/इंटरव्यू) के लिए क्वालिफाई कर सकते हैं। यदि आपको अंक न्यूनतम अंकों से कम अंक आ रहे हैं तो यह चिंता की बात है। आपकी रातों की नींद गायब हो जानी चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपके साथियों के तो औसत 40 प्रतिशत अंक आ रहे हैं और आपके 75 प्रतिशत अंक आ रहे हैं। मुद्दा यह है कि आप अभी भी न्यूनतम 80 प्रतिशत से 5 प्रतिशत अंक कम हैं। यदि दूसरे लोग अपने प्रदर्शन से चिंतित नहीं हैं तो यह उनकी समस्या है। आपको हमेशा यह कोशिश करनी चाहिए कि आप न्यूनतम से कम-से-कम 10 प्रतिशत ज्यादा बेंचमार्क प्रतिशत लाएँ। इस प्रकार से यदि फाइनल परीक्षा में आप अपने से 10 प्रतिशत कम भी पाते हैं तो भी आपका काम चल जाएगा। आम धारणा के विपरीत ऊपरी स्तर पर अभी भी बहुत जगह खाली है। समस्या यह है कि ऐसे कम लोग हैं, जो अपना समय और शक्ति लगाकर वहाँ पहुँचना चाहते हैं।

• **जब दिल टूट जाए तो क्या करें—**हममें से कुछ ऐसे लोग हैं, जो युवावस्था में रोमांस करने लग जाते हैं या प्यार में पड़ जाते हैं। उनके आपस में गिले-शिकवे और सुलह-सफाई भी होती रहती है। उनकी कुछ माँगें होती हैं और आप कुछ त्याग करते हैं। ऐसे रिश्ते आपसे बहुत कुछ चाहते हैं और आप भावनाओं में बह जाते हैं। कुछ लोगों का तो बिलकुल एकतरफा प्यार होता है, जहाँ पर जिसे हम चाहते हैं, उसको हममें कोई दिलचस्पी नहीं होती। ऐसे में दिल टूटना अवश्यंभावी है, जब तक हम किसी प्रकार से अपने प्रेमी का दिल न जीत लें, जो हमें घास भी नहीं डालता। ऐसी परिस्थितियों में हमारा अपने कैरियर (लक्ष्य) से ध्यान हट जाता है। वह व्यक्ति जो प्यार में ठुकरा दिया जाता है और जीवन-संग्राम में भी असफल रहता है, उसके लिए यह एक बहुत सरल बहाना होता है अपने पतन को समझाने के लिए। मैं इसे 'बहाना' इसलिए कहता हूँ क्योंकि यदि कोई व्यक्ति सच्चे दिल से किसी को चाहता है, प्यार करता है तो वह जीवन में कभी असफल नहीं होगा। आपको कारण चाहिए? मैं आपको एक कारण बताता हूँ—

मैं आपसे एक मूलभूत सवाल करूँगा। आप किसी के प्यार में क्यों पड़ें? कितनी आसान बात है आप कहेंगे। यह साफ बात है कि वह 'कोई' खास व्यक्ति होगा। मैं इसे दूसरी तरह से कहता हूँ। मान लीजिए, आप किसी से प्रेम करते हैं और मैं आपसे उसे प्रेम करने का कारण जानना चाहूँ तो आप क्या कहेंगे? अगर मैं बहुत गलत नहीं हूँ तो वह भलामानुस मुझे बताएगा कि वह महिला, जिसे वह प्रेम करता है, वह सुंदर है, बुद्धिमान है। उसमें आत्मविश्वास है। वह स्नेही है, अच्छी तरह शिक्षित है, सुसंस्कृत है, समझदार है और अपने भविष्य के प्रति जागरूक है (वैकल्पिक)। वह यह भी कह सकता है कि उसके सम्मुख वह पुरुष की तरह अनुभव करता है।

दूसरी ओर वह महिला बताएगी कि जिस पुरुष को वह चाहती है, वह खुबसूरत है, बुद्धिमान है, हँसी-मजाक करनेवाला है, अपने भविष्य के प्रति निरंतर प्रयासरत है (यह आवश्यक है), हमारी परवाह करता है, बहुत आत्मविश्वासी है और मुझे स्त्री की तरह अनुभव होने देता है। संक्षेप में, दोनों ही लोग (पुरुष/स्त्री) एक-दूसरे में कुछ गुण देखते हैं या उसकी कामना होती है। लगभग निश्चित रूप से यह कोई नहीं कहेगा कि वह इसलिए प्रेम करते हैं क्योंकि दूसरा आदमी प्रेम का भूखा है और चुपके-चुपके रोते हुए एक पप्पी की तरह प्यार की भीख माँग रहा है। यही बिंदु है। चाहे आप जितनी कोशिश क्यों न करें, आप किसी का दिल नहीं जीत सकते, जब तक आप अपने अंदर आकर्षण न पैदा करें तथा कुछ ऐसे गुणों का विकास करें, जो लोग पसंद करते हैं और जिनकी सब जगह माँग है। इस तरह के गुण अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सतत प्रयास द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं। किसी पुरुष/स्त्री के पीछे, जो आपकी उपेक्षा कर रहा हो, भागते रहना, उसको खो देने का सबसे निश्चित तरीका है। पीछा करने से वह चिढ़ जाएगा या डर जाएगा। इस प्रकार का आचरण प्रेम में असफल रहना का सबसे जल्दीवाला तरीका है।

जिस व्यक्ति को आप चाहते हैं उस पर अपनी छाप छोड़ने या प्रभावित करने का एक ही तरीका है कि आप अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखें। आप आगे बढ़कर उसे अपने दिल की बात बता दीजिए, फिर वापस जाकर अपने काम पर लग जाइए। दरअसल यदि आपके प्यार को किसी ने ठुकरा दिया है तो आपको दुगुने जोश-खरोश से अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लग जाना चाहिए। इससे दो मकसद हल होंगे। एक तो आपको अपने गम को भुलाने के लिए तुरंत ही एक ध्यानांतरण करने का जरिया मिल जाएगा, दूसरा यह कि उस स्त्री-पुरुष को यह संदेश भी मिल जाएगा कि आप कोई प्यार के भूखे 'पप्पी' नहीं हैं। यह याद रखें कि कोई पाँवदान-डोरमैट नहीं पसंद करता। इसलिए बेहतर है कि आप एक डोरमैट न बनें।

दिल टूटने के कई कारण हो सकते हैं—जैसे पारिवारिक (माता-पिता, भाई-बहन और संबंधी) दोस्त, सहकर्मी, पड़ोसी आदि की वजह से। लगभग सभी वे व्यक्ति जिनके आप संपर्क में हैं और जिन्हें आप तवज्जो देते हैं, वे सब आपका दिल दुखा सकते हैं। दर्द की तीव्रता अलग तरह की होती है, पर फिर भी दर्द तो होता है। कभी-कभी आप उस व्यक्ति को भी कुछ शारीरिक कष्ट देना चाहते हैं, या आप स्वयं को ही कष्ट देने या नुकसान पहुँचाने की स्थिति तक पहुँच जाते हैं। किसी प्रिय द्वारा दिल दुखा दिए जाने पर आपको गुस्सा भी आता है और बदले की भावना भी घर कर जाती है। यहाँ तक कि आप अपने जीवन का ही अंत कर देने की सोचने लगते हैं। ऐसी भावनाएँ असंपूर्ण और अकेंद्रित क्रोध की भावना से पैदा होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में आप बहुत उदास और निराश अनुभव करते हैं। आपको एक घायल व्यक्ति की तरह यह स्थिति बहुत निराशाजनक और बेकाबू लग सकती है। पर वास्तव में यह आपके लिए बहुत दुर्लभ और मूल्यवान् अवसर है।

क्रोध एक बहुत ही शक्तिशाली भावना है, जो मनुष्य को हमेशा से पता है। यह मनुष्य के शरीर रचना की एक उत्कृष्ट प्रतिक्रिया है—उस घोर दबाव की, जो शरीर और मन को एक ऐसे काम के लिए तैयार करती है, जिसे वह साधारण परिस्थिति में नहीं करेगा। क्रोध भय का उलटा है। एक दबावपूर्ण स्थिति में जीव की प्रतिक्रिया या तो उससे लड़ने की होती है या भाग जाने की होती है। मनोवैज्ञानिक भाषा में इसे 'युद्ध करो या भाग जाओ' ('फाइट' ऑर 'फ्लाइट') प्रतिक्रिया कहते हैं। अगर दबाव से भय पैदा होता है तो आप उससे दूर भाग जाएँगे। यह 'Flight' या भागने की प्रतिक्रिया है। पर यदि दबाव से आपके मन में क्रोध उत्पन्न होता है तो आप उस परिस्थिति का सामना करेंगे और उससे लड़ने के लिए तैयार हो जाएँगे।

इस तरह की साफ-सुथरी प्रतिक्रिया निम्न श्रेणी के जानवरों में पाई जाती है। मनुष्य में इसके बीच की कुछ स्थिति है। वह इसलिए क्योंकि उसमें 'बुद्धि' नाम की चीज है। बुद्धि मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है, क्योंकि यह आपकी जन्मजात प्रतिक्रिया को थोड़ा हलका कर सकती है, उसे सुधार सकती है, जोकि प्राकृतिक प्रतिक्रिया है।

एक बहुत दबावपूर्ण स्थिति, बुद्धि के साथ मिलकर एक बेमिसाल मौका पैदा कर देती है। एक ऐसी परिस्थिति, जिसमें आपके अंदर क्रोध उबल रहा है, आपके मन और शरीर में एक असाधारण शक्ति पैदा हो जाती है। ऐसी स्थिति में अकसर आप में तेजी से शारीरिक अनियमित क्रियाओं के द्वारा गुस्सा बाहर निकालने की प्रवृत्ति होती है। पर ऐसी प्रतिक्रिया विनाशकारी होती है। क्रोध की शक्ति नाभिकीय शक्ति की तरह होती है। यदि वह विस्फोट कर दे तो

अत्यंत विनाशकारी होती है, पर यदि इस को बाँध लिया जाए या कंट्रोल कर लिया जाए तो वह इतनी बिजली पैदा करा सकती है कि लाखों घर रोशन हो जाएँ। इसलिए यदि आप क्रोधित हैं तो आप शक्तिशाली या ऊर्जावान् हैं।

आप याद रखें कि आपकी बुद्धि आपके क्रोध से ज्यादा ताकतवर है। आपको केवल अपनी बुद्धि का प्रयोग करना है। यदि आपका क्रोध एक घोड़े की तरह है तो आपकी बुद्धि एक कुशल घुड़सवार की तरह है। आप इस घोड़े की शक्ति को बाँधकर, नियंत्रित करके अपने लक्ष्य-प्राप्ति की दिशा में मोड़ सकते हैं। जिसने आपका दिल दुखाया है वह आपको उन्नति करते नहीं देख सकता। जीवन में आपकी उन्नति या उत्थान उसके मुँह पर सबसे बड़ा तमाचा होगा। यदि आपने अपने क्रोध या निराशा को काट नहीं दिया और उन्हें अपना कैरियर नष्ट करने दिया तो वह उस बेईमान आदमी की जीत होगी। जिस क्षण आप अपने क्रोध को अपनी बुद्धि को नष्ट करने देते हैं, आप उस स्त्री/पुरुष को अपने ऊपर जीतने का मौका दे देते हैं। दबाव द्वारा जो शक्ति आपके अंदर आई है, यदि आप उसे सही दिशा में मोड़ दें तो आप अपने सपनों को साकार कर सकते हैं और अपने लक्ष्य को जल्दी से प्राप्त कर सकते हैं। मैं जानता हूँ कि दिल टूट जाना एक गंभीर समस्या है, पर यदि आप एक ताकतवर आदमी हैं तो यह आपके लिए एक अच्छा मौका भी है।

• **बिना योग्य व्यक्तियों की सहायता के सफलता पाना**—यह एक ऐसा कथन है, जिससे मैं पूर्णतया असहमत नहीं हूँ। यदि आपके अच्छे लोगों से संपर्क हैं तो उनसे मदद मिल जाती है। सही जगह पर सही लोगों से आपकी जान-पहचान है तो उनसे आपको मदद मिल सकती है और वे जीवन के पथ पर अग्रसर होने में आपके सहायक हो सकते हैं। पर सही लोगों को जानना भी आपके भविष्य-निर्माण की युति है—जैसे कि किसी युद्ध-योजना को बनाना। बहुत से लोग यह सोचने लगते हैं कि यही एक योजना है, जो सफलता दिलाती है। पर दरअसल यह योजना एक बड़ी योजना का छोटा सा हिस्सा है। आप स्मरण रखें कि पूरी दुनिया एक तरह से 'जैसा करोगे वैसा पाओगे' के सिद्धांत पर काम करती है। यानी जब आप किसी के कुछ काम आएँगे तो वह आदमी भी आपके कुछ काम आ सकता है। एक अंग्रेजी मुहावरा इसे अच्छी तरह वर्णित करता है, 'तुम मेरी पीठ खुजाओ, मैं तुम्हारी पीठ खुजाता हूँ।' (You scratch my back & I'll scratch yours)

आप एक मिनट के लिए सोचें, कोई असरदार व्यक्ति आपकी मदद किसलिए करे? या तो इसलिए कि हो सकता है कि आप भविष्य में उसके किसी काम आ सकते है या आपके अंदर कोई निहित शक्ति या प्रतिभा है। ऐसा भी हो सकता है कि किस्मतवश आपको वह किसी कारण पसंद करता हो, जिसकी

संभावना बहुत कम है। अंततोगत्वा यह सवाल कुछ विशेष गुणों का है, जिन्हें आपको अपने अंदर विकसित करना चाहिए, अपने भविष्य-निर्माण के लिए—इसके पहले कि किसी सही जगह पर कोई सही आदमी आपको गंभीरता से ले।

और अब मान लीजिए कि कोई सही आदमी मिल ही जाता है तो ज्यादा-से-ज्यादा वह आपको किसी अच्छी जगह दाखिला दिला देगा या नौकरी पाने में या प्रमोशन में आपकी मदद कर देगा। मुद्दा यह है कि वह आपको शुरुआती रेखा (स्टार्टिंग लाइन) पार करने में तो आपकी मदद कर देगा। पर एक बार यह रेखा पार कर गए तो फिर आप अपनी मेहनत और योग्यता के बलबूते ही आगे कुछ कर पाएँगे। सही जगह पर सही आदमी आपको शुरुआती सफलता तो दिला सकता है, पर उस सफलता को बनाए रखना आपकी अपनी काबिलियत पर निर्भर है। बहुत से लोग, जो इस रूट से सफलता पाते हैं, अकसर बीच रास्ते में धराशायी हो जाते हैं, जोकि बहुत अपमानजनक स्थिति हो जाती है, यह दुःस्वप्न और भयावह स्थिति होती है, इसके बदले कि आप धीरे-धीरे गिरते-उठते अपनी सफलता की राह पर चलें।

यहाँ पर हम आदर्श स्थिति की बात कर रहे हैं। हम यह मानकर चल रहे हैं कि वह आदमी, जो हमारी मदद कर रहा है वह किसी जादू की छड़ी को घुमाकर हमारे रास्ते से सारी बाधाएँ दूर कर देगा! पर वस्तुतः आप पाएँगे कि वह अच्छे संबंधोंवाला आदमी थोड़ी सी ही 'हाशिए पर' मदद कर पाएगा। वह आपको शायद इंटरव्यू की स्टेज पर थोड़ा सा मदद कर दे, पर लिखित परीक्षा में तो आपको स्वयं ही पास करना पड़ेगा। वह आपको फिल्म के डायरेक्टर से मिलवा तो सकता है, पर स्क्रीन टेस्ट तो आपको स्वयं ही देना पड़ेगा।

मैं बहुधा इस प्रकार के छात्रों से मिला हूँ, जो हमेशा यह शिकायत करते हैं कि वह इंटरव्यू में इसलिए रिजेक्ट हो गए, क्योंकि दूसरे के पक्ष में काफी तगड़ा राजनीतिक दबाव था। यह अपने को धोखा देने का सबसे अच्छा तरीका है। असलियत यह है कि इस तरह का जोर-दबाव उन प्रत्याशियों को तो प्रभावित कर सकता है, जो या जर्नल या बॉर्डर लाइन पर स्थित हैं, पर जो उत्कृष्ट किस्म के विद्यार्थी हैं उनको यह बिलकुल प्रभावित नहीं करता। एक आउटस्टैंडिंग (उतत्कृष्ट) कैंडीडेट को तो अपना हक मिलेगा-ही-मिलेगा, चाहे उसके दोस्त जितना चाहे जोर-दबाव करें। उसको एक तरह का मान-सम्मान मिलेगा ही। एक विद्यार्थी, जो अपनी योग्यता और गुणों के 'आधार' पर चुना गया है, उसे अपने दोस्तों का मान-सम्मान मिलेगा ही।

जो व्यक्ति अपने दम पर आगे बढ़ता है वह एक ऐसी प्रतिष्ठा का धनी बन जाता है, जिससे उसका आत्मविश्वास और बढ़ जाता है। यह स्थिति उसे और बड़े

लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। इसके विपरीत कोई व्यक्ति जो बैसाखियों के सहारे खड़ा है, वह धीरे-धीरे रेंगते हुए जोंक की तरह आगे बढ़ेगा। आप इसमें से कौन बनना चाहते हैं, यह आपका निजी मामला है।

• **व्यक्तित्व का विकास**—वह कुछ चीज जिसे 'पर्सनैलिटी' या 'व्यक्तित्व' कहते हैं, वह एक सुपरसेट है। वह बहुत व्यापक शब्द है, जिसके अंदर ऐसे गुणों का समावेश होता है—जैसे शिक्षा, भाषा, बोलने का लहजा, कपड़े पहनने का सलीका, बोलने-चालने का तरीका, तहजीब, बहुर्मुखी, दक्षता, नैतिकता और आपका शारीरिक गठन (आपका पूरा बदन और कपड़े पहनने, केश सँवारने आदि का ढंग)। कोई भी आदमी जो सफल होना चाहता है, उसे अपने अंदर इन उपरोक्त गुणों का विकास करना चाहिए, जिससे वह दस आदमियों के बीच में अकेला दिखे। व्यक्तित्व, भाग्यवश या दुर्भाग्यवश, कई वर्षों के रख-रखाव और और देख-रेख के परिणामस्वरूप होता है। एक बार इसकी पक्की नींव पड़ जाती है तो उसके मूल ढाँचे में बहुत कम परिवर्तन किया जा सकता है। तथापि, यह अच्छी खबर है कि अगर आपके पास एक अच्छा आधार है तो उसको बेहतर बनाने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। पर इसके पहले कि हम उसमें कुछ बेहतर बनाएँ, हमें यह समझना होगा कि जो गुण ऊपर बताए गए हैं, उनके अर्थ क्या हैं?

शिक्षा—"हमने जो कुछ पढ़ा-लिखा है, सीखा है, उसे भूल जाने के बाद जो बचा है वह शिक्षा है।" मुझे वास्तव में यह पता नहीं कि यह किसने कहा है, पर यह मेरी बात को समझाने में मदद करता है। हममें से अधिकतर लोग 'शिक्षा' और 'साक्षरता' को एक समझते हैं। यह गलत है। साक्षरता का अर्थ है—थोड़ा लिख-पढ़ लेना। कुछ लोगों का साक्षरता का स्तर बहुत ऊँचा हो सकता है; पर उनमें शिक्षा नहीं के बराबर हो सकती है। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि शिक्षा का अर्थ बहुत व्यापक है और महज पढ़ने-लिखने की योग्यता कहीं ज्यादा है। शिक्षित होने का मतलब यह नहीं है कि आप अच्छे से पढ़े हैं। इसका मतलब है कि आपका अच्छी तरह से विकास हुआ हो। अच्छी शिक्षा से आपके मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है। यह आपकी मानसिक क्षमताओं को बढ़ा देती है और आपको अपने मानसिक लचीलेपन और नई परिस्थितियों के अनुसार ढलने की योग्यता द्वारा आपको नई सूचनाओं और चुनौतियों से निपटने के लायक बनाता है। सही शिक्षा आपके मन में/दिमाग को काफी लचीलापन प्रदान करती है। साथ-ही-साथ वह आपके अंदर 'उच्च' नैतिकता का विकास करती है। इस प्रकार शिक्षा मस्तिष्क का सही दिशा में संपूर्ण विकास करती है।

साक्षरता या सूचना नैतिक या अनैतिक हो सकती है, पर यह शिक्षा ही है, जो हमें दोनों चीजों में फर्क समझने की काबिलियत देती है। एक शिक्षित आदमी

के पास तमाम सूचनाएँ होती हैं। वह विश्वास से भरा होता है और नैतिक होता है।

नीतिज्ञान—यह शायद सबसे ज्यादा अमूर्त यानी साकार गुण है। एक आदमी के लिए इसका अर्थ है—''वह, जो अच्छा है।'' पर फिर 'अच्छे' शब्द से हम क्या समझें, यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। एक परिस्थिति में जो चीज अच्छी हो सकती है, वही दूसरी परिस्थिति में खराब हो सकती है। एक मिसाल से यह चीज ज्यादा अच्छी तरह समझी जा सकती है। आप झूठ बोलने के मसले को ही लीजिए। सब लोग यह बात मानते हैं कि झूठ बोलना गलत है। पर क्या यह हमेशा सही है या व्यावहारिक है या केवल सिद्धांत रूप में है?

मैं आपको एक चुनाव करने को कहता हूँ। मान लीजिए आपको कोई ऐसी गुप्त सूचना मालूम है जो राष्ट्र-हित की है और यदि यह सूचना आपके दुश्मनों के हाथ लग जाए तो आपके देश का और उसकी जनता का भारी नुकसान हो सकता है। अब आप मान लीजिए कि आप दुश्मनों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं और आपसे सख्ती से पूछताछ की जाती है कि आप वह सूचना उन्हें बता दें। ऐसी परिस्थिति में आप क्या करेंगे? क्या आप वही करेंगे जो नीतिपरक है और सच बोल देंगे? या अपने देश की रक्षा के लिए झूठ बोलेंगे? मेरे खयाल से इस प्रश्न का उत्तर निस्संदेह एकमत से एक ही होगा। यदि हमने सच बोल दिया तो वह विनाशकारी होगा। तो अचानक जो चीज 'अच्छी' थी, वह 'खराब' बन जाती है। इसलिए 'नीति या नैतिकता' हमेशा अच्छे में ही नहीं परिवर्तित होती। फिर, यदि 'नीति' अच्छे में नहीं बदलती तो इसका अर्थ क्या हुआ? मेरे खयाल से ये वह योग्यता है, जिससे हम पहचान पाएँ, क्या सही है? फिर अब हमें 'सही' की परिभाषा जाननी होगी। मैं इसे इस तरह से परिभाषित करूँगा कि सही वह है जो एक 'बड़े हित' के लिए हो। अपनी किताब में मैंने नीतिपरक को 'निस्स्वार्थ' होना कहा है। इसका अर्थ है कि आप एक सीमित व्यक्तिगत हितों को परे करके बड़े जनहित को ध्यान में रखकर काम करें। ऐसे व्यक्तिगत मसले 'वित्तीय' से लेकर 'आध्यात्मिक' तक हो सकते हैं।

यदि आपके पास ऐसा मजबूत चरित्र है तो आप एक नैतिक व्यक्ति की तरह देखे जाएँगे और आपको संस्थाएँ ढूँढ़ेंगी। आप पर विश्वास किया जा सकता है और आप भरोसेमंद सिद्ध होंगे। 'विश्वसनीयता' और 'भरोसेमंद' ये दो शब्द आपकी नीति की पक्की नींव का सीधा परिणाम हैं। एक बार आपके पास ये गुण आ जाते हैं या आप इनका विकास कर लेते हैं तो आपके व्यक्तित्व में एक दुर्लभ गहराई आ जाती है, जो आपके लिए स्वतः तमाम मौकों के द्वार खोल देती है।

साहस—जैसे कि एक इमारत बिना ठोस नींव के बेकार है, उसी तरह से बिना साहस के व्यक्तित्व भी खोखला होता है। मैं शुरू में ही आपको चेतावनी दे रहा हूँ कि साहस हिंसा, मार-धाड़ और बेवकूफी के काम करने में नहीं है। यह सब नकारात्मक गुण (या अवगुण) हैं, जबकि साहस एक पॉजिटिव या सकारात्मक गुण है। साहस कभी भी नकारात्मक गुण नहीं हो सकता है। यह आत्मा को परिभाषित करनेवाला गुण है। आपको साहसी होने के लिए आर्नल्ड स्वार्जनेगर (या दारा सिंह) की तरह का शरीर नहीं चाहिए। वास्तव में यह भी जरूरी नहीं है कि आपका शरीर सामान्य और संपूर्ण हो। आपको दरअसल चारित्रिक ताकत या मजबूती चाहिए (Strength of Character)। दृढ़ धारणा और विश्वास करने ही एक साहसी व्यक्ति को अन्य लोगों से अलग करता है। उसी के साथ एक साहसी आदमी को अपनी धारणाओं व विश्वास को बनाए रखने के लिए त्याग करने और तमाम कठिनाइयाँ सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

आपको लक्ष्मी निवास मित्तल होने या बिल गेट्स होने की जरूरत नहीं है, यदि आप साहसी बनना चाहते हैं तो। साहसी होने के लिए न तो आपको शारीरिक ताकत (मसल पॉवर) की जरूरत है और न ही मनी पॉवर या धन की जरूरत है।

मेरे लिए एक रिक्शा-चालक एक साहसी आदमी है। यह सच है कि वह सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर रहकर अपनी रोजी-रोटी कमा रहा है। पर यदि आप उसकी एक भिखारी के साथ तुलना करें तो मेरी बात आपकी समझ में आ जाएगी। अपना जीवन-यापन करने के लिए वह आसानी से भीख माँगने का धंधा कर सकता था। यह उसके लिए बहुत ज्यादा आसान और शायद ज्यादा फायदेमंद धंधा रहता। पर इसके बावजूद वह कठिन शारीरिक श्रम करके ईमानदारी से पैसा कमाना चाहता है, न कि भीख माँगकर। हम सभी शायद एकमत से इस बात पर सहमत होंगे कि संभवतः उसके विचार से भीख माँगकर पेट पालना बहुत ही मानवता (या पशु के समान) से नीचे का काम है। उसके पीछे उसकी यही धारणा काम कर रही है कि भीख माँगना एक निकृष्ट काम है और मेहनत से पैसा कमाना, पेट पालना एक इज्जत का काम है। इसलिए ऐसा आदमी मेरे मत में एक साहसिक व्यक्ति है।

इस प्रकार से हमारे अंतिम विश्लेषण में, साहस को हमें अपने आपसे चुनना है। जब भी कोई आदमी ऐसा काम करने को चुनता है, जो दूसरे अनैतिक कामों की तुलना में कठिन होता है, वह साहस का प्रदर्शन कर रहा है। वह विद्यार्थी, जो नकल करने से अपने को रोकता है, जबकि अन्य कई विद्यार्थी नकल कर रहे हैं, वह मेरी नजर में साहसी है। इसी तरह से वह अधिकारी भी साहसी है, जो दबाव में भ्रष्ट होने से, घूस लेने से बचा रहता है।

अपनी योग्यता में विश्वास रखना और जब कोई सिरा न दिख रहा हो, दूसरा किनारा न दिख रहा हो, तब भी आगे बढ़ते जाना ही साहसिकता की निशानी है। परिस्थितियाँ बदल सकती हैं, उनका असर भी बदल सकता है; पर सब साहसी आदमियों में एक गुण बराबर पाया जाता है, वह है विषमताओं को सहना —अपनी धारणाओं के लिए, विश्वास के लिए; जबकि कई आसान विकल्प उपलब्ध हों।

बनाव-शृंगार (Grooming)—आपने वह कहावत सुनी होगी कि 'किसी किताब का उसकी जिल्द से मत निर्णय करो' यानी किताब अच्छी है या बुरी, उसकी जिल्द देखकर यह फैसला मत करें। यह बहुत सटीक कहावत है और मैं इससे सहमत हूँ। पर यह बात भी उतनी ही सही है कि जिल्द या कवर का भी एक महत्त्व है। यहाँ 'कवर' से मतलब उसकी पैकेजिंग से है।

यह आवश्यक है कि आप अच्छे गुणों से भरपूर हों। पर यह भी अति आवश्यक है कि उन्हें अच्छी तरह 'पैकेज' किया हो। यह एक मानवीय प्रवृत्ति है कि वह उन चीजों के प्रति आकृष्ट होती है, जो साफ-सुथरी हों और अच्छी तरह पेश की गई हों। सही पैकेजिंग आवश्यक है यह बात मनुष्यों पर भी उसी प्रकार लागू होती है, जैसे सामान और सेवाओं पर। आप दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकें, इसलिए जरूरी है कि आप अच्छी तरह साफ-सुथरे कपड़े पहने हों और बाल सँवारे हों। आपके शरीर पर जो भी चीजें बाहर से दिखती हैं, अच्छी तरह सजने-सँवरने में काम आती हैं, चाहे वे आपके बाल हों, नाखून हों, दाँत हों, कपड़े, जूते, घड़ी, पैन, रूमाल, गलमुच्छे आदि—ये सब चीजें, जो बाहर से दृष्टिगोचर होती हैं, सब में एक अच्छा टेस्ट और क्लास झलकना चाहिए।

कृपया याद रखें कि मैं आपको 'स्ट्रेट-जैकेट' या हर वक्त टाई-सूट से पैक होने को नहीं कह रहा हूँ। मेरे कहने का मतलब है कि यदि आप एक डिस्को में लाउंज सूट पहनकर जाएँगे तो हास्यास्पद ही लगेगा, है ना! पर इसी तरह एक जॉब इंटरव्यू या बिजनेस मीटिंग में टी-शर्ट और जीन्स पहनकर जाएँगे तो कैसा लगेगा? अच्छी तरह से ड्रेसअप किया आदमी एक चुंबक की तरह होता है, उसकी तरफ सब लोग खिंचे चले आते हैं तथा उसकी ओर सब प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं। आपकी गुड-ग्रूमिंग ऐसी होनी चाहिए कि आपके शारीरिक अवगुणों को छुपा दे और जो अच्छी चीजें हैं उन्हें निखार दे। यह बहुत ही जरूरी है, यदि आपको पहली बार में इंप्रेशन जमाना है। पहला इंप्रेशन चाहे आपका आखिरी इंप्रेशन न हो, पर उसकी छाप लंबे समय तक बनी रहती है। एक अच्छी छाप या इंप्रेशन वह है जो आपको दूसरे के ऊपर, जो उसी क्षेत्र में हैं, थोड़ा सा ज्यादा वेटेज दे या आप उससे बीस ठहराए जाएँ।

इस दुनिया मे जहाँ हर मार्क (अंक) मायने रखता है, यह बनाव-शृंगार या आप अपने आपको कैसे किसी के सामने प्रजेंट करते हैं, बहुत मायने रखता है। यह आपके कैरियर को बना सकता है या बिगाड़ सकता है सफलता और असफलता के बीच में यह एक छोटी सी पर अहम चीज है। आपको कोई स्वीकार कर सकता है या आपका मखौल उड़ाया जा सकता है। अतएव यदि आप अच्छे शक्तिशाली व्यक्तित्व का विकास करना चाहते हैं तो अपने को ठीक से अच्छी तरह ग्रूम करें। अच्छे तौर-तरीके सीखें। अच्छे 'टेस्ट' (रुचि) का विकास करें। लोगों को/चीजों को देखें। जिन लोगों को आप आकर्षक पाते हैं, उन्हें अच्छी तरह देखें और उनकी साज-सज्जा में क्या 'प्लस पॉइंट' है या क्या चीजें अच्छी हैं, उन्हें नोट करें। आप इस क्षेत्र में किसी दूसरे की मदद भी ले सकते हैं। जरूरी हो तो किसी फिनिशिंग स्कूल में जाएँ। अपने पैरेंट्स, टीचर और जो आपके सीनियर लोग हैं उनसे मदद लें।

इस बात का खयाल जरूर रखें कि आप इसके प्रति बहुत ज्यादा आकर्षित न हों। हाँ, इस पर ध्यान देना भी जरूरी है, कि आप हमेशा टाई-सूट में तने-बने न रहें। मेरा कहने का मतलब यह है कि आप अपने रख-रखाव, बनाव-शृंगार पर सही समय लगाएँ और शक्ति खर्च करें। अपने शरीर को सुडौल बनाएँ, अपना 'पोस्चर' ठीक रखें, सीधे खड़े हों, जरूरी हो तो जिम भी जाएँ। ऐसा करने से आप स्वयं अच्छा महसूस करेंगे। आपके अंदर विश्वास आएगा। आपकी चाल-ढाल में चुस्ती-फुरती आएगी और चेहरे पर मुसकराहट होगी। अचानक आपको लगेगा कि आपको लोग प्रशंसा की दृष्टि से देखने लगे हैं। आप आगे बढ़कर इसे आजमाएँ। यह काम करता है।

हॉबीज और आपकी दिलचस्पियाँ—यह आपकी पर्सनैलिटी या व्यक्तित्व का ऐसा हिस्सा है, जो उतना ही रहस्यमय है जितना ही महत्त्वपूर्ण है। इसका ढीला-ढाला अनुवाद, बोलचाल की भाषा में, पाठ्यक्रम से परे क्रिया-कलाप (Extra-Curricular Activities) है। यह वह काम है, जो हम अपने रुटीन काम और पढ़ाई-लिखाई से हटकर करते हैं। इस दुनिया में कोई भी चीज आपकी हॉबी या दिलचस्पी हो सकती है। पर इसके पहले कि हम आगे बढ़ें, हमें हॉबी और दिलचस्पी का फर्क समझ लेना चाहिए। दिलचस्पी या इंटरेस्ट एक ऐसा काम है, जिसे हम मनोरंजन या आत्म-संतुष्टि (Self-Satisfaction) के लिए करते हैं। पर हम इसके लिए अलग से समय नहीं निकालते हैं, न ही इसमें हम कोई पढ़ाई-लिखाई की तरह गंभीर होते हैं। हमें जब समय और मौका मिलता है, हम इसमें दिलचस्पी लेकर काम करने लगते हैं, अन्यथा नहीं।

हॉबी या शौक या कोई रचनात्मक काम करना बिलकुल ही अलग चीज है। यह पूरी तरह से बस में करनेवाला है। यह एक आवेश है। यह एक ऐसी चीज है, जिसके लिए हम अलग से समय निकालते हैं और उसे करने के मौके ढूँढ़ते रहते हैं। एक हॉबी अवश्य ही शैक्षिक हो सकती है। कई बार ऐसा होता है कि आदमी अपने हॉबी के बारे में अपने काम से ज्यादा जानने लगता है। आप यह कह सकते हैं कि आपकी हॉबी और कुछ नहीं है, बस आपकी दिलचस्पी में आवेश की बड़ी मात्रा का होना है। पर अब बड़ा सवाल यह है कि किस प्रकार से हॉबी या दिलचस्पी आपके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है? मेरा कहना है कि हर ऐसा काम (खासकर हॉबी) आपकी पर्सनैलिटी में निखार लाता है, एक और फलक जोड़ता है। हम व्यक्तित्व को एक हीरे की तरह मान सकते हैं। एक अच्छा सा तराशा हुआ हीरा, जिसके बहुत सारे फलक होते हैं, वे उसकी चमक को बढ़ाते हैं। पर उसी गुणवत्ता का हीरा, जिसे कम तराशा गया है, जिसमें कम फलक होंगे, वह कम चमक बिखेरेगा। इसलिए बाजार में बढ़िया तराशे गए हीरे की ज्यादा कीमत होती है, बजाय किसी दूसरे के।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए की वस्तुतः दोनों हीरे अंदर से एक समान हैं। केवल एक अंतर है कि एक में कम फलक हैं और कम तराशा गया है। अब इसी दृश्य को यदि हम किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर लागू करें तो पाएँगे कि एक आदमी/औरत, जिसके कई फलक हैं, वह अपनी चमक उस आदमी से कहीं ज्यादा बिखेरता है, जो उतना ही गुणी है, पर जिसके व्यक्तित्व में फलक कम हैं। ऐसा व्यक्तित्व या व्यक्ति 'बहुमुखी' प्रतिभाशाली आदमी कहलाता है और उसे तुरंत ही ज्यादा गुणोंवाला मान लिया जाता है। इसके अलावा हॉबीज से आपके क्षितिज का विस्तार होता है और आप अपने खाली समय को अच्छे से बिता सकते हैं, विश्राम कर सकते हैं। जो आदमी अपने व्यस्त कार्यक्रम से समय निकालकर अपनी हॉबी को पूरा करते हैं, वे 'वर्कहोलिक' होने से बच जाते हैं। यह आपको रिटायरमेंट के बाद भी व्यस्त रहने का मौका देता है, जिससे आप एकदम खाली न महसूस करें।

कभी-कभी आपकी हॉबी इतनी विकसित हो जाती है कि एक दिन वह आपका कैरियर या पेशा बन जाता है। ऐसी कई मिसाल हैं—जैसे डॉ. पलाश सेन, जो एक डॉक्टर से गायक बन गए, शेखर कपूर एक चार्टर्ड एकाउंटेंट से फिल्म निर्देशक या अमिताभ बच्चन, जो एक मैनेजर से आज के सबसे बड़े फिल्म अभिनेता बन गए। ये तीन उदाहरण मेरे दिमाग में एकदम से आते हैं। पर भारत में और विदेशों में ऐसे कई और लोग भी हैं। आप स्वयं ऐसे कुछ लोगों को जानते होंगे। अतः एक हॉबी होना भी आपको एक कैरियर चुनने का विकल्प भी प्रदान करता है, जिसका आप आराम से विकास कर सकते हैं। इसके अलावा,

यह भी कहा जाता है कि सबसे खुशनसीब आदमी वह है, जिसका पेशा उसकी हॉबी हो।

तहजीब (मैनर्स)—यह व्यक्तित्व का ऐसा हिस्सा है, जो अमूर्त भी है और ठोस या साकार भी है। आपके व्यक्तित्व के जो-जो तत्त्व अभी ऊपर दिए गए हैं, उनके प्रभाव को यह और बेहतर कर सकता है या फिर उसे खत्म कर सकता है। यह उन्हें 'फिनिशिंग टच' देता है और 'केक पर आइसिंग' की तरह है (Icing on The Cake)। अंग्रेजी मुहावरा है यह जिसका अर्थ है—आइसिंग द्वारा केक को सजाना। मैनर्स का एक हलका सा अर्थ है—अच्छा व्यवहार। पर सही मायनों में यह अच्छे व्यवहार से कहीं अधिक है। आपकी सारी पर्सनैलिटी का बाह्य प्रक्षेपण है। आपके शब्द, आपके शरीर की भाषा, दूसरों के साथ मिलने-जुलने बातचीत करने का तरीका, सेंस ऑफ ह्यूमर (मजाक समझने की शक्ति) आदि तथा आपकी मान्यताएँ (Value System)। यह सब मिलकर आपके तौर-तरीके में झलकते हैं। सामाजिक या सरकारी मीटिंगों के दौरान अच्छे व्यवहार से आपका अच्छा प्रभाव पड़ता है। और अपने दोस्तों, सीनियर और जूनियर के लिए सामान्य रूप से स्वीकार्य होते हैं।

हम लोग जब बड़े हो रहे थे तो हमारे बुजुर्ग हमेशा कहते थे कि हमें अच्छी आदतें और मैनर्स सीखने चाहिए। मेरे विचार से, अच्छी तहजीब से मतलब है कि परिस्थिति के अनुसार व्यवहार किया जाए। अब, एक उदाहरण द्वारा आपको समझाना चाहूँगा। मान लीजिए आप किसी सामाजिक समारोह में गए हैं—जैसे कि विवाह। वहाँ आपको कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाता है, जिससे आपकी दुश्मनी रही है। आपका उससे गुस्से से मिलना या कुछ अनाप-शनाप कहना जायज है। पर मौके की नजाकत समझते हुए यह बेहतर होगा कि आप उससे भिड़ने से बचें और उससे दूर-दूर ही रहें। आपका मेजबान भी यही चाहेगा। हो सकता है, आपका मन कर रहा हो कि उसे तमाचा जड़ दें या गोली मार दें (क्षमा कर देना बेहतर विकल्प है), पर उस समय आपको अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए, जिससे माहौल खराब न हो। आपके मेजबान को भी इससे कोई लज्जा महसूस नहीं होगी।

मैं यहाँ यह भी जोर देकर कहना चाहूँगा कि अच्छे व्यवहार से मतलब है कि आप दोनों ओर अति न करें। अधिकतर समय—न बहुत भले बनें, न बहुत बुरे। एक संयमित व्यवहार करें। व्यवहार-कुशल बनने की चेष्टा करें। अच्छे व्यवहार का मतलब है कि आप अपने अंदर एक तरह की चतुराई या कौशल तथा श्रेणी (क्लास) का विकास करें और उसके औचित्य का ध्यान रखें। अंत में, पर बिलकुल आखिरी बात नहीं, आप वहाँ के स्थानीय रिवाजों और क्या चीजें प्रचलन में हैं, उसका भी ध्यान रखें। एक अच्छे व्यवहारवाले आदमी के बारे

में माना जाता है कि उसकी शिक्षा-दीक्षा अच्छी हुई है और परिवार ने भी उसे अच्छे संस्कार दिए हैं तथा मित्र व शत्रु दोनों ही उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखते हैं।

संगति का प्रभाव—आप यह पूछ सकते हैं, ''वेल, व्यक्तित्व पर विचार-विमर्श अच्छा रहा। पर हम इतने सारे गुण कैसे ग्रहण करें? कहाँ से उन्हें प्राप्त करें?'' मैं इसको एक उचित प्रश्न मानता हूँ। अलग-अलग लोग इस प्रश्न का अलग-अलग जवाब देंगे। कुछ लोग आपको किताबें पढ़ने के लिए कहेंगे तो कुछ लोग शिक्षकों और मार्गदर्शकों की सलाह लेने को कहेंगे। पर मेरा इस प्रश्न का जवाब बहुत सीधा-सा है—''यह सब इस बात पर आधारित है कि आप किन लोगों की संगति में रहते हैं। महाभारत में, जो भारत का एक महाकाव्य है, में एक कथा-प्रसंग है, जहाँ एक यक्ष युधिष्ठिर से कई प्रश्न पूछता है। युधिष्ठिर पाँचों पांडवों में से सबसे बड़े और सबसे बुद्धिमान थे। इस कथा में युधिष्ठिर को यक्ष के सारे प्रश्नों का सही-सही जवाब देना होता है, क्योंकि यदि उसने किसी प्रश्न का गलत उत्तर दिया तो यक्ष उन्हें मार डालेगा। उन प्रश्नों में से एक बहुत ही गूढ़ प्रश्न था। यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि खुशी या प्रसन्नता की क्या परिभाषा है? इस प्रश्न का बुद्धिमान पांडव युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, ''सत्संग।'' यह एक हिंदी शब्द है, जो दो शब्दों सत्= अच्छा, संग= साथ या कंपनी—यानी अच्छी कंपनी या साथ।

यह जाहिर है कि प्राचीन काल से आपके 'साथ' को काफी मान्यता दी गई है। हम सब अंग्रेजी की इस कहावत से परिचित हैं कि 'ए मैन इज नोन बाई द कंपनी ही कीप्स'। यानी कौन व्यक्ति किन लोगों के साथ रहता है, उठता-बैठता है, इसी से उसकी पहचान बनती है। अतः एक दृढ़ और मधुर व्यक्ति बनना इस बात पर ज्यादा आधारित है कि आप जिस रास्ते पर चल रहे हैं, वह तो अच्छा हो ही, साथ में यह भी कि इस यात्रा में आपके साथ किस प्रकार के लोग हैं। आदमी का मस्तिष्क दुनिया में सबसे लचीली चीज है या कहें कि एक मिट्टी के लोंदे की तरह है, जिसे जिस तरह आप जैसा चाहें, ढाल सकते हैं। यह बहुत ही संवेदनशील है और संदेशों को प्राप्त करने या ग्रहण करनेवाला और सूचना को रिकॉर्ड करनेवाला सबसे शक्तिशाली अंग है। हम सूचना केवल अपनी आँखों और कानों से ही नहीं ग्रहण करते, बल्कि सारी पाँचों इंद्रियों से ग्रहण करते हैं। उसी समय हम बहुत सारी सूचना निश्चेष्ट रूप या अचेतन मन से भी ग्रहण करते हैं, बजाय कि क्रियाशील रहते हुए।

अगर आप मेरी इस बात से सहमत नहीं हैं तो थोड़ा रुकिए और सोचिए कि कब और कैसे आपने अपने शहर की सड़कों के नाम याद किए। यदि मैं सही हूँ तो पिछले कई सालों में बिना किसी प्रयास के किस तरह से आपको उन सड़कों के नाम याद हो गए थे। यदि सड़क जैसी एक बेजान चीज आप पर इतनी

छाप छोड़ सकती है तो आप कल्पना करें कि मनुष्यों का साथ आपको कितना प्रभावित कर सकता है। हम अनचाहे ही और हमेशा के लिए उन लोगों के गुण-अवगुण ग्रहण कर लेते हैं, जिनके साथ हम ज्यादा समय तक रहते हैं। एक शोध के अनुसार अपने बाद के जीवन में पति-पत्नी एक-दूसरे के जैसे दिखने लग जाते हैं। एक अन्य शोध के अनुसार लंबे अरसे के बाद व्यक्ति अपने पालतू कुत्ते या बिल्ली जैसे दिखने लग जाते हैं।

यदि संग का किसी के व्यक्तित्व पर इतना गहरा और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है तब तो आप थोड़ी सी तकलीफ उठाकर अपने लिए अच्छे मित्रों की खोज करें और फिर उनके साथ ही रहने का प्रयास करें। खयाल रखें, मैं आपको बिलकुल अलग-थलग रहने को या असामाजिक होने के लिए नहीं कह रहा हूँ। सामाजिकता एक बात है और दोस्ती या साथी-संगति दूसरी बात है। एक मित्र या साथी वह है, जिसके साथ आप अन्य लोगों की तुलना में ज्यादा समय व्यतीत करना चाहेंगे। अपने साथी के साथ आप अपनी सोच, भावनाएँ, हॉबी और सफलता-असफलता तथा भाग्य-दुर्भाग्य सब शेयर करना या बाँटना चाहेंगे।

मैं आपको उन लोगों से दोस्ती करने को कहूँगा, जिनका मजबूत व्यक्तित्व हो। मजबूत (स्ट्रांग) का मतलब यह नहीं है कि वह 'अतिवादी' हो। आपने 'व्यक्तित्व' के ऊपर मेरे विचार ऊपर पढ़े होंगे तो आपको याद होगा कि आप अपने मित्रों में किन गुणों की खोज करें। मेरे खयाल से उस व्यक्ति की आपको बहुत ज्यादा जाँच-पड़ताल नहीं करनी पड़ेगी; बल्कि एक व्यक्ति, जो सर्वगुण-संपन्न है, वह स्वतः ही आपको प्रभावित करेगा। आप स्वयं ही उसका साथ ढूँढ़ने लगेंगे। जब मैं कंपनी/साथ पर इतना जोर दे रहा हूँ, इसका मतलब यह नहीं है कि मैं व्यक्तित्व के अन्य गुणों या अवयवों के महत्त्व को कम कर रहा हूँ, जो आपकी पर्सनैलिटी को प्रभावित करते हैं। उन सबका पूरी तौर पर उपयोग किया जाना चाहिए। केवल यह बात है कि मेरी राय में, अच्छी या बुरी कंपनी/साथ का प्रभाव बाकी सब प्रभावों से थोड़ा बढ़कर है।

पढ़ने की आदत—''टू बी ऑर नॉट टू बी, दैट इज द क्वेश्चन'', ''कोई चीज/व्यक्ति हो या न हो, यह सवाल है।'' यह एक पुराना कथन है। आज की दुनिया में इसे हम ऐसे कह सकते हैं—''पढ़ा जाए या न पढ़ा जाए?'' यह बड़ा व्यंग्यात्मक है कि आज सूचना प्रौद्योगिकी के युग में ऐसा लगता है कि सबसे बड़ी शिकार सूचना ही हुई है। हमें याद है, जब हम बच्चे थे, सबको पढ़ने का बड़ा चाव था। कॉमिक बुक्स से लेकर बच्चों की कहानियाँ/ उपन्यास आदि सबकुछ। एक बच्चा जाति-बाहर समझा जाता था, यदि वह ये सब चीजें नहीं पढ़ता था। न तो उन दिनों इंटरनेट था, न मोबाइल फोन थे और टी.वी. में

भी केवल एक चैनल था तो चैनल-सर्फिंग का तो कोई सवाल ही नहीं था। किताबें, मैगजीन (पत्रिकाएँ) और अखबार ही सूचना के मुख्य स्रोत थे, यही हमारे मनोरंजन के साधन भी थे। दूसरा साधन खेल-कूद था। लाइब्रेरी किताबों से ठसा-ठस भरी रहती थीं और अच्छी किताबों का संग्रह एक तरह के स्टेटस सिंबल का प्रतीक था। पर दुःख की बात है कि आज के दौर में इसमें आमूल-चूल परिवर्तन आ गया है, जोकि सकारात्मक कम और नकारात्मक ज्यादा है। तमाम तरह के मीडिया के हमलों ने छपे हुए शब्द को धीरे-धीरे हाशिए पर लाकर खड़ा कर दिया है या लगभग निकाल ही दिया है। अब वह सूचना के लिए आपका चेहता माध्यम नहीं रह गया है।

आज हम देखते हैं कि ज्यादातर छात्र और नौजवान बहुत कम पढ़े हुए हैं (यानी कोर्स की किताबों के अलावा)। ऑडियो-विजुअल (श्रव्य-दृश्य) मीडिया पर ज्यादातर लोग निर्भर हैं तथा उनका भी इस्तेमाल ज्यादातर समय बरबाद करने वाला है। पढ़ने की आदत काफी कम हो गई है, जबकि किसी व्यक्ति की सफलता के लिए उसकी उपयोगिता नहीं घटी है। कोई स्त्री/पुरुष, जो इस दुनिया में सफल होना चाहता है, उसे अवश्य ही पढ़ना पड़ता है। कम-से-कम एक अच्छा अखबार रोज पढ़ना अत्यंत आवश्यक है।

इसके अलावा एक पढ़े-लिखे आदमी के लिए जरूरी है कि उसकी अपनी व्यक्तिगत लाइब्रेरी या पुस्तकों का संकलन हो। इस संग्रह में उसके अध्ययन या पेशे से जुड़ी हुई अच्छी किताबें या उसकी अभिरुचि और अन्य दिलचस्पीवाली पुस्तकें हों। अर्थशास्त्र और विज्ञान के शब्दकोश, जिससे आप इकोनॉमिक टर्म्स और वैज्ञानिक शब्दावली के कुछ टर्म्स (शब्दों) का ज्ञान प्राप्त कर सकें। एक अच्छे पढ़े-लिखे आदमी के तौर पर आपको राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय इतिहास का ज्ञान भी होना चाहिए और साथ ही साहित्य व दर्शन-शास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक है।

इसके अलावा जरूरी है कि आप राष्ट्रीय स्तर की अच्छी पत्रिकाएँ भी पढ़ें, जिससे आप राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय करेंट अफेयर्स (समसामयिक गतिविधियों) को अच्छी तरह समझ सकें। ठीक है, मुझे पता है कि आप क्या कहने वाले हैं!

"मैं एक खिलाड़ी हूँ, मैं वे सब किताबें क्यों पढ़ूँ, जिन्हें आपने ऊपर बताया है? या मैं किसलिए इतना सब पढ़ूँ? इसका उत्तर है कि अच्छी तरह पढ़े-लिखे का महत्त्व सार्वभौमिक है। मैं इस बात से नहीं इनकार करता कि जो लोग दफ्तरों में काम कर रहे हैं या किन्हीं अन्य कामों में लगे हैं, उनका पढ़ना-लिखना ज्यादा अहमियत रखता है। पर उन लोगों को, जो अन्य क्षेत्र, जैसे स्पोर्ट्स (खेल-कूद) या नृत्य कला, नाटक, रंगमंच आदि से भी जुड़े हैं, उनका भी स्वाध्याय करना

जरूरी है। अध्ययन या पढ़ने से उद्देश्य यह नहीं है कि आप सूचना एकत्र करते रहें। उसका एक उद्देश्य यह भी है कि आप एक परिपक्व दिमाग, विश्लेषण करनेवाले और ग्राह्य मस्तिष्क का विकास करें। अच्छी किताबें पढ़ने से आपके मन में अच्छे विचार आते हैं। इससे आपका शब्द-ज्ञान और अपने भावों को व्यक्त करने की शक्ति का विकास होता है। अध्ययन करना दिमाग के लिए वैसे ही जरूरी है जैसे शरीर के लिए जिम जाना जरूरी होता है। यह आपके दिमाग को टोनअप करता है, ताकत देता है और युवा बनाए रखता है।

मुझे विश्वास है कि ऐसा मस्तिष्क किसी भी क्षेत्र में, चाहे वह ऑफिस हो, खेल-कूद हो या नृत्य-नाटक हो, एक संपत्ति होता है। यदि आप मुझसे इत्तफाक नहीं रखते तो अपने चारों ओर देखिए। किसी भी क्षेत्र में जो लोग उच्च पदों पर आसीन हैं, वे अच्छे पढ़े-लिखे और ज्ञानी लोग हैं। अतएव, यदि आप अध्ययन नहीं कर रहे हैं तो स्वयं ही को हानि पहुँचा रहे हैं। इस तरह से आप अपने व्यक्तित्व को मजबूत बनाने की संभावना कम कर रहे हैं और परिणामस्वरूप आपकी सफलता की संभावना कम हो जाती है।

अब अगला सवाल कब और कैसे पढ़ा जाए? जहाँ तक 'कैसे' का सवाल है, मेरा मानना है कि पहले आप किसी किताब को एक बार सरसरी निगाह से 'स्कैन' करें या पढ़ें और फिर उसे दोबारा ध्यान से पढ़ें। जब आप कोई किताब पढ़ने के लिए खोलें तो उसके पन्नों को यूँ ही उलट-पलटकर सारे चैप्टर के टाइटल वगैरह देख डालें। इसे 'स्कैनिंग' कहते हैं। स्कैनिंग से पुस्तक से आपका थोड़ा सा परिचय हो जाता है और वह आपको डरावनी या कठिन नहीं लगती। एक बार स्कैनिंग के बाद आप पढ़ना चालू कर सकते हैं। उपन्यास वगैरह हलकी चीजों के लिए स्कैनिंग उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी कि कोई भारी-जटिल पुस्तक पढ़ने के लिए, जिसमें तमाम सूचनाएँ और डाटा होते हैं।

पढ़ाई हमेशा शांत मन से और आनंद लेते हुए करनी चाहिए, न कि उसे 'रट' लेने के इरादे से। हमारा ध्यान इस बात पर रहना चाहिए कि लेखक का केंद्रीय विचार या मुख्य विचार क्या है। हममें से ज्यादातर लोग शब्दों पर ध्यान देते हैं, जोकि ठीक नहीं है। यह उसी तरह से है जैसे आप अफ्रीकन सफारी पर गए हों और बजाय खिड़की के बाहर के दृश्य और पशु-पक्षियों के देखने के, आप जीप की सीट या अंदर की अन्य चीजों पर ध्यान दे रहे हों। आप याद रखें कि लेखक की भाषा उसके विचारों को आप तक पहुँचाने का माध्यम मात्र है। यदि आप उसके शब्दों को/भाषा को रटने की कोशिश कर रहे हैं तो आपकी पढ़ने और समझने की कोशिश व्यर्थ जा रही है। बहुत सारी किताबें हैं, जो आपको अच्छी तरह पढ़ने की टेक्नीक से अवगत कराती हैं। आप ऐसी किताबों की मदद ले सकते हैं। उन लोगों से मदद लीजिए, जो किसी किताब के पन्ने उलट-पलटकर

देखने के बाद उसे समझ लेते हैं और उसके विचारों को मन में धारण कर लेते हैं। प्रभावी और कुशल पढ़ाई करने की प्रैक्टिस करना वैसे ही है जैसे आप कोई वाद्य-यंत्र (सितार, वायलिन आदि) सीखते हैं, अभ्यास करते हैं।

'कैसे' पढ़ा जाए, इस पर चर्चा करने के बाद हम 'कब' पढ़ा जाए, इस पर चर्चा करते हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि पढ़ने के मामले में 'कब' का उतना महत्त्व नहीं है (यह आपका व्यक्तिगत मामला है)। आप अपनी सुविधानुसार समय तय कर लें और पढ़ाई करें। पर फिर भी, मैं आपको सलाह दूँगा कि सुबह का समय पढ़ने के लिए सबसे अच्छा होता है। जब आपको किसी और काम में ज्यादा ध्यान देना है तो उस वक्त न पढ़ना ही ठीक है। उदाहरण के तौर पर, यदि कोई सिपाही (जवान) जिस वक्त वह मोरचे पर शत्रुओं से लड़ाई लड़ रहा है, उस वक्त वह सोचे कि मैं कोई प्रेरणादायक किताब पढ़ूँ तो यह महामूर्खता ही कहलाएगी। ऐसे में संभावना है कि वह पढ़ने के लिए जिंदा ही न बचे। इसी प्रकार से मीटिंग या लेक्चर के बीच में पत्रिका पढ़ने से बचें। इस तरह का पढ़ना कोई पढ़ना नहीं है, बल्कि समय जाया करना है। और जहाँ तक आपका मानसिक क्षितिज बढ़ाने का या कैरियर बढ़ाने का सवाल है तो भी यह उसके लिए कुछ भी नहीं है।

इन सब चीजों (समय को) छोड़कर किसी भी वक्त खाली समय में पढ़ाई की जा सकती है, जब आपको किसी और काम पर ध्यान नहीं देना है। आप यात्रा के समय पढ़ सकते हैं, यदि आप स्वयं ड्राइव न कर रहे हों तब। आप डॉक्टर के क्लीनिक में उसकी प्रतीक्षा करते समय पढ़ सकते हैं या चाहें तो टॉयलेट में भी पढ़ सकते हैं। मुद्दा यह है कि कुछ न पढ़ने से कुछ पढ़ते रहना बेहतर है। तो फिर आगे बढ़ें, पढ़ना शुरू करें और अपनी सफलता का मार्ग प्रशस्त करें।

विषम परिस्थितियों का मूल्य—मानव होने के नाते हम सब दुर्भाग्य या प्रतिकूल परिस्थितियों से बचना चाहते हैं, दूर रहना चाहते हैं। कुछ गड़बड़ या गलत होने वाला है, यह सोचकर ही हम डरने लगते हैं और परेशान होने लगते हैं। और मैं भी एक इनसान होने के नाते इससे सहमत हूँ। दुर्भाग्य और कठिन परिस्थितियाँ हमें बहुत नीचा दिखाती हैं और दयनीय स्थिति में ला देती हैं। इसलिए मैं आप पर आरोप नहीं लगाऊँगा, यदि आप आगे बढ़कर उसे स्वयं गले नहीं लगाते। पर एक क्षण रुकें और सोचें कि क्या 'दुर्भाग्य' या कठिन दिन इतने ही 'नकारात्मक' गुण हैं हमारे जीवन में? क्या प्लेग की बीमारी की तरह हमें इससे बचते रहना चाहिए? या इसकी कोई सकारात्मक भूमिका भी है?

हम एक क्षण रुककर सोचें! हम लोगों की यह प्रवृत्ति है कि हम 'दुर्भाग्य', 'विपत्ति' या 'महाविपदा' सबको समानार्थी समझते हैं। पर क्या वे वाकई

में समानार्थी हैं? यदि हम इसे एक मिनट के लिए गणित के कायदे से समझें तो 'एडवर्सिटी' या विपत्ति एक 'सुपरसेट' है, कैलामिटी (विपत्ति) और डिजास्टर (विपदा) उसके सब-सेट हैं। साधारण भाषा या अंग्रेजी में विपत्ति (Adversity) और डिजास्टर (विपदा) विपत्ति तो हैं, पर हर विपत्ति (Adversity) कलामिटी (विपत्ति) या विपदा नहीं हैं। और यहीं पर पकड़ है। मैं सब-सेट की सिफारिश नहीं करता, सुपरसेट यानी एडवर्सिटी या विपत्ति के बारे में बात करूँगा। पर इसके पहले कि हम आगे बढ़ें, हम एडवर्सिटी (विपत्ति) के मायने समझ लें।

विपत्ति एक ऐसी दशा है जिसमें चीजें, घटनाएँ या परिस्थितियाँ हमें अपने आराम के दायरे से बाहर निकाल देती हैं। 'आराम के दायरे' से मतलब है—वे सब स्थितियाँ/दशाएँ, जिनकी गैर-मौजूदगी में हम तनाव में रहते हैं या चुनौती का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, यदि हमें एक खास किस्म के बिस्तर पर खास गद्दे और तकिए के साथ ही सोने की आदत है और यदि हमारा बिस्तर बदल जाता है तो हमें उस पर नींद नहीं आती है। अतः नींद के लिए आपका 'कंफर्ट जोन' अपना बिस्तरा है। जिस क्षण आप अपने बिस्तर की कोई चीज बदलते हैं, आप अपने कंफर्ट जोन से बाहर निकलकर आ रहे हैं और अपनी नींद के लिए एक प्रतिकूल परिस्थिति का निर्माण कर रहे हैं। इसी प्रकार से कोई भी चीज, जो आपके आराम में कमी लाती है, वह आपके लिए विपत्ति है।

बेशक आपकी विपत्ति का आपके आराम के स्तर पर कितना प्रभाव पड़ता है, उसी हिसाब से आप उस विपत्ति का संज्ञान लेंगे और वह घट-बढ़ सकता है। पर उसकी परिभाषा यही रहेगी, चाहे उसका जितना छोटा प्रभाव हो। हम दलील के लिए कह सकते हैं कि सबसे ज्यादा आरामदायक दशा होती है जीरो (शून्य) स्तर की विपत्ति। जैसेकि आप अपने प्रिय बिस्तर पर ए.सी. चलाकर अपने कमरे में लेटे हों, सोए हों और पढ़ रहे हों या टी.वी. देख रहे हों या रेडियो संगीत सुन रहे हों, जो भी आपका पसंदीदा काम हो। या मैं इसको इस प्रकार से कह सकता हूँ कि सबसे कम विपत्ति की अवस्था वह है जिसमें आप अपना मनचाहा काम अपनी पसंद के माहौल में कर रहे हों। पर मान लीजिए, हम आपसे कहें कि आप अपना पसंदीदा काम पसंदीदा माहौल में हमेशा या अनंत काल तक कर सकते हैं—जीवन-पर्यंत। तो क्या तब भी यह काम आपको उतना ही अच्छा लगेगा? क्या आप कुछ समय बाद उससे बोर या ऊब नहीं जाएँगे? क्या वह तब भी उतना ही खूबसूरत और आरामदेह लगेगा, जैसा अभी लग रहा है? मेरा अनुमान है—नहीं।

अंततोगत्वा आपको कुछ परिवर्तन चाहिए, बदलाव चाहिए। और इस बदलाव के लिए आपको अपने 'कंफर्ट जोन' से बाहर निकलना पड़ेगा। और इसी बिंदु

पर हम अपनी मुख्य दलील पर वापस आते हैं। दलील है—"विपत्ति निगेटिव नहीं होती। दरअसल एक समय पर वह इतनी मूल्यवान् होती है कि हमें उसे स्वयं गले लगाना होता है।"

अब हम इस दलील को समझने की कोशिश करते हैं। कैसे कुछ समय के लिए आसमान में बिजली की चमक की तरह विपत्ति हमारे लिए लाभदायी हो सकती है? दबाव (Stress) कैसे महत्त्वपूर्ण हो सकता है? क्या हमारे जीवन का लक्ष्य यह नहीं है कि हम कैसे खुशियाँ और आराम प्राप्त करें?

मुझे इसका उत्तर देने दीजिए! एक क्षण के लिए दुनिया में सबसे अबोध और निस्सहाय चीज की कल्पना कीजिए! मेरे खयाल से, यह एक नवजात शिशु होना चाहिए। यदि दुनिया में किसी जीव सबसे ज्यादा आराम से और खुश रहना चाहिए तो वह एक नवजात शिशु ही हो सकता है। पर आप सोचिए कि उसके माँ के गर्भ से निकलने के कुछ घंटे बाद हम क्या करते हैं। हम उसकी मुलायम त्वचा में एक इंजेक्शन भोंक देते हैं और उसे DPT या ऐसी ही किसी चीज का टीका लगा देते हैं। अब आप उस नन्हे से बच्चे के दृष्टिकोण से देखिए! कुछ ही मिनटों के अंदर वह अपनी माँ की कोख से, जिसमें वह पिछले नौ महीने से आराम से रह रहा था, पोषण पा रहा था, उसमें से वह बलपूर्वक बाहर निकाल दिया जाता है। उसे अपने आप साँस लेनी होती है। और जैसे यह सब काफी नहीं था, उसको इंजेक्शन भी भोंक दिया जाता है, जिस वक्त वह सबसे ज्यादा दबाव या तनावपूर्ण स्थिति में है। मैं यह कहूँगा, बच्चे के नजरिए से कि वह स्थिति उसके लिए विपत्ति की नहीं, विनाश की है। यदि शिशु से पूछा जाए तो वह अभी अपनी माँ के गर्भ से शायद निकलना ही न चाहेगा, वहीं रहना चाहेगा, जहाँ उसे आराम से पोषण मिल रहा है—बिना मुँह खोले। और रहने का वातावरण ऐसा है कि उसे गुरुत्वाकर्षण भी असर नहीं करता। पर क्या यह स्थिति बच्चे के लिए हमेशा के लिए ठीक रहेगी? कतई नहीं।

बच्चे को दुनिया में आना-ही-आना है; दुःख-मुसीबतें झेलनी-ही-झेलनी हैं; टीके का दर्द सहना-ही-सहना है; हर तरह के मौसम—जाड़े की ठंड, गरमी, बरसात सब तरह की मुसीबतें झेलनी-ही-झेलनी हैं—यदि उसे दुनिया में जीवित रहना है और बढ़कर एक सफल वयस्क बनना है।

अब आप सोचिए, आप कैसे बड़े हुए? स्कूल जाना और क्लास में बैठकर पढ़ना भी एक तरह की विपत्ति थी। परीक्षा देना एक और बड़ी मुसीबत थी। साइकिल से गिर जाना और कलाई की हड्डी टूट जाना उससे बड़ी मुसीबत थी। पापाजी की कार चोरी-छुपे चलाना और उसको इधर-उधर भिड़ा देना, उससे भी बड़ी विपदा थी। डैड को कार-दुर्घटना के बारे में बताना तो जैसे विनाशकारी ही था।

पर आपने वे सब चीजें और उससे अधिक कठिनाइयाँ सहीं। और अब आप जब पीछे मुड़कर देखते होंगे तो पाएँगे कि आपने इन सब विपत्तियों व मुसीबतों का डटकर सामना किया, बजाय उनसे दूर भागने के, तभी आप यहाँ तक पहुँच पाए।

वस्तुस्थिति यह है कि विपत्ति या प्रतिकूल परिस्थितियाँ न केवल वांछित हैं, वे सफलता के लिए जरूरी भी हैं। मैं अपनी बात साबित करने के लिए कई उदाहरण पेश कर सकता हूँ। पर सबसे बड़ा उदाहरण तो मनुष्य के विकास का है। चार्ल्स डार्विन—मानव-विकास के आधुनिक सिद्धांत के जन्मदाता—ने बिना किसी संदेह के यह सिद्ध कर दिया है कि जीव के रास्ते में उसके वातावरण द्वारा कठिनाइयाँ पेश आती हैं। जीव अपने आपको उसी के अनुसार बदलता है और उसके अनुकूल अपने को ढाल लेता है। इस प्रक्रिया में पुरानी प्रजातियाँ नई एवं ज्यादा मजबूत प्रजातियों द्वारा हटा दी जाती हैं। नई प्रजातियाँ, जो माहौल के अनुसार ज्यादा सहनशील और इस कारण ज्यादा सफल होती हैं।

डार्विन के सिद्धांत 'एडॉपबिलिटी' या अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने को हमें किसी विपत्ति को झेलने के समय-केंद्र में (फोकस में) रखना चाहिए। यदि हम परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना सकते हैं तो आप उन्हें बदल डालिए। और यदि आप उन्हें बदल नहीं सकते तो अपने को परिस्थितियों के मुताबिक ढाल लीजिए। किसी भी तरह विपत्ति को हम विकास और प्रगति की प्रक्रिया में एक सहायक मान सकते हैं। हमारा शरीर ऐसा हर समय करता रहता है।

प्रतिदिन हमें नए-नए पैथोजन्स (कीटाणुओं) का सामना करना पड़ता है। उसमें से कुछ तो हमारे अंदर बीमारी पैदा कर सकते हैं, लेकिन सबके सब हमारे इम्यून सिस्टम (रोग-प्रतिरोधक क्षमता) द्वारा शरीर के बाहर फेंक दिए जाते हैं—इसके पहले कि वे विषाक्त होकर हमारे शरीर में कुछ गड़बड़ी पैदा करें। तथापि, इस तरह के सारे आक्रमण हमें एवं हमारे इम्यून सिस्टम को और ताकत प्रदान करते हैं। इस तरह से कि जब ये पैथोजन्स दुबारा हमला करते हैं तो हमारे शरीर पर उनका कोई असर नहीं पड़ता है। किसी बीमारी को झेलना एक बहुत बड़ी विपत्ति है। एक बच्चा, जो बहुत रोगाणुहीन वातावरण में पला हो और उसे यदि युवावस्था में एकदम से बाहर निकाल दिया जाए तो वह तमाम बीमारियों से जकड़ जाएगा और शीघ्र ही मर जाएगा।

इसमें समझने की बात यह है कि परिस्थितियाँ या वातावरण हमेशा एक जैसे नहीं रहते। परिवर्तन इस संसार का नियम है। चीजें हर वक्त बदलती रहती हैं। कोई भी परिवर्तन, जोकि प्रकृति के विरुद्ध है, वह इतनी समस्या नहीं है जितना कि मौका है। ऐसे बदलाव के लिए पॉजिटिव (सकारात्मक) रुख अख्तियार

करना और उनसे पार पाने के लिए उपाय एवं रास्ते ढूँढ़ना हमें शक्ति देता है और जीवन में हमारी सफलता के लिए बहुत सहयोग देता है। अतएव, विपत्तियों से दूर न भागें, बल्कि उनका सामना करें। दरअसल मैं तो यह कहूँगा कि कभी-कभी आप स्वयं ऐसे मौके की तलाश में रहें। इसका एक साधारण-सा कारण है कि विपत्ति मूल्यवान् होती है।

एक सोची-समझी रणनीति के अनुसार पीछे हट जाना—हम सबकी यही धारणा है कि युद्ध में समर्पण कर देना या पीछे हट जाना कायरों का काम है। आदमी के लिए यही एक रास्ता है कि वह खड़ा हो और युद्ध करे। मैं इससे पूरी तरह सहमत हूँ। पर क्या हम युद्ध शुरू करें? इस बारे में हमें थोड़ा रुककर सोचना चाहिए। मुझे पूरी आशा है कि आप सब भगवान् श्रीकृष्ण के नाम से परिचित होंगे। वह अपने जमाने के सबसे बड़े योद्धा थे और किसी भी युद्ध में वह पराजित नहीं हुए थे। पर यह तथ्य कम ही लोगों को ज्ञात है कि वह ज्यादा लड़ाइयों से पीछे हट गए थे और उससे कहीं कम लड़ाइयों में वास्तव में उन्होंने युद्ध किया था। इसी कारण से उनका एक नाम 'रणछोड़' पड़ा था—यानी वह व्यक्ति जो युद्ध से भाग जाता है। तो कैसे एक व्यक्ति, जिसे 'रणछोड़' कहा जाता है, एक महान् योद्धा हो सकता है? इसका उत्तर सीधा-सा है। श्रीकृष्ण को यह पता था कि कौन सी लड़ाइयाँ लड़ने योग्य थीं और किन्हें छोड़ दिया जाए।

मैंने कभी एक कहावत पढ़ी थी। वह इस प्रकार थी—'मैंने बहुत पहले यह सीख लिया था कि सुअर से मत लड़ो। आपके कपड़े गंदे हो जाते हैं और सुअर को यह पसंद आता है'। और यही मर्म है। युद्ध करना महत्त्वपूर्ण है। पर असली लड़ाई और बेकार के विवाद में अंतर करना उससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। यह भी खास बात है कि लड़ने के पहले हम अपने विवादों का आकलन कर लें और युद्ध जीता जा सकता है या नहीं, यह भी सोच लें।

यदि परिस्थिति निराशाजनक है और आपको पता चल जाता है कि यह ऐसी लड़ाई है जिसे आप जीत नहीं सकते तो नष्ट हो जाने से बेहतर पीछे हट जाना है। यह न केवल व्यर्थ है, बल्कि यह बेवकूफी भी है कि आप किसी असंभव चीज के पीछे जान दे दें। बेहतर है कि आप ऐसी किसी परिस्थिति से बाहर निकल आएँ, अपने संसाधनों को एकत्र करें, समय लें और शक्ति का संचय करें तथा फिर इस पर विचार करें कि क्या वापस जाकर युद्ध करना ठीक होगा? यदि फिर भी आप सोचते हैं कि लड़ाई लड़ना और जोखिम उठाना ठीक है, तब आप अपनी पूरी शक्ति और साधनों के साथ योजनाबद्ध तरीके से मैदान में उतर जाइए। आलोचक ऐसे कृत्य को 'कायरता' कह सकते हैं, पर मेरे खयाल से यह 'बहादुरी' का उत्कृष्ट नमूना है। यदि आप स्वेच्छा से अस्थायी हार मान लेते हैं तो

इससे ज्यादा वीरतावाली कोई बात हो ही नहीं सकती—यदि यह अंतिम विजय के लिए एक सीढ़ी है तो।

आपका त्याग, जो आपको फल मिलने वाला है, उसके समानुपाती होना चाहिए। यदि आपको निश्चित तौर पर पता है कि आपकी मृत्यु (युद्ध में) से आपके देश और उसकी जनता का अस्तित्व बरकरार रहेगा तो समर्पण करना अनुचित है। पर इसके विपरीत, यदि आपका त्याग या शहीद हो जाना एक गैर-जरूरी बहादुरी का काम है और जिस उद्देश्य के लिए लड़ाई है, उसकी प्राप्ति नहीं होगी तो फिर समर्पण का विकल्प बेहतर है। आप योद्धा के साथ-साथ एक रणनीतिज्ञ भी बनिए। फिर बहुत जल्द आप स्वयं को जनरल की सीट पर पाएँगे।

समय की पाबंदी—जीवन का एक तरीका (Punctuality : Away of Life)—यदि आप मुझसे पूछें कि एक सफल व्यक्ति और एक असफल व्यक्ति में क्या फर्क है या कि एक विकसित राष्ट्र और विकासशील राष्ट्र में क्या फर्क है, तो मैं एक शब्द में उत्तर दूँगा—'समय-निष्ठा' या 'पाबंदी'। इस संदर्भ में मैं एक बार फिर नोबेल पुरस्कार विजेता लेखक रुडयार्ड किपलिंग को उद्धृत करना चाहूँगा—"यदि आप अक्षम्य मिनट को 60 सेकंड के समय में जितनी दूरी से दौड़कर भर सकते हैं तो आपके लिए सारा जहाँ और उसकी सब चीजें हैं। और इससे भी अधिक आप एक आदमी होंगे, मेरे बेटे।" इस एक गुण का मूल्य उन लोगों ने कभी नहीं खोया है, जो जीवन में सफल हैं या सफल होने की आशा रखते हैं। समय की पाबंदी में जो अंतर्निहित चीज है, वह यह नहीं कि हमें कुछ मिनट बचा लेना है; पर इस गुण का महत्त्व यह है कि हम दूसरे व्यक्ति को कितना 'सम्मान' देते हैं, उसके समय की कितनी कद्र करते हैं।

एक आदमी, जो पाबंद है, 'पंक्चुअल' है, वह दूसरों के प्रति आदर-भाव रखता है। एक समय-निष्ठ या पाबंद आदमी समय की कद्र करता है, उसका मोल जानता है। वह आदमी इस तथ्य से भलीभाँति विज्ञ है कि दुनिया का सबसे सच्चा संसाधन समय है। ऐसा आदमी कभी भी मीटिंग के लिए लेट नहीं होता; किसी क्लास के लिए या किसी समारोह या मिलने-जुलने के लिए लेट नहीं होता; क्योंकि उसे पता है कि उसके लेट हो जाने से अन्य सब लोगों का समय भी नष्ट होगा। उसे इस बात की समझ है कि समय सीमित है। दूसरे आदमी के लिए अंतर्निहित सम्मान और उसके संसाधन के लिए आदर ही उस व्यक्ति को समय-निष्ठ या पंक्चुअल बनाता है। 'सम्मान देना' जिस समाज की संस्कृति का हिस्सा है, मेरे हिसाब से समय की पाबंदी भी उसी संस्कृति का एक हिस्सा है।

जापान इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है। जापान एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ सम्मान, स्वयं के लिए भी और दूसरों के लिए भी, एक बहुत बड़ा सांस्कृतिक गुण है। इसके परिणामस्वरूप जापानी इस दुनिया में सबसे ज्यादा समय के पाबंद लोग हैं। इससे उनकी काम करने की दक्षता कई गुना बढ़ जाती है, जो अनुकरणीय है। उनकी पूरी कार्य-प्रणाली एक घड़ी की सुई की तरह चलती है। ट्रेनें बिलकुल सही समय पर आती-जाती हैं, जिससे आप अपनी घड़ी मिला सकते हैं। किसी भी मीटिंग में किसी भी व्यक्ति को किसी के आने का इंतजार नहीं करना पड़ता। इस सम्मान देने के सांस्कृतिक गुण की वजह से आज सबसे ज्यादा घनत्ववाली आबादीवाला देश (जापान) एक दिन में लाखों मैन-आवर्स (घंटे) बचा लेता है, जोकि यदि लोग अमूमन लेट-लतीफ होते तो नष्ट हो जाते। इससे जाहिर है कि उनकी उत्पादन-क्षमता कई गुना बढ़ जाती है। जापान की समय की पाबंदी के तरीके से उन्होंने 'जस्ट-इन-टाइम' (बिलकुल सही समय पर) मैनेजमेंट का एक तरीका ढूँढ़ निकाला है। इस तरीके की वजह से उन्हें सामानों की लंबी 'इन्वेटरी' (स्टॉक) नहीं रखनी पड़ती है। इससे उद्योग और बिजनेस का करोड़ों डॉलर प्रतिवर्ष बच जाता है। यह समय-निष्ठा एक बहुत बड़ा जीवंत उदाहरण है, जिससे राष्ट्रों की आर्थिक दशा में तमाम सुधार हो सकते हैं।

जो तथ्य राष्ट्रीय स्तर पर सत्य है, वह व्यक्तिगत स्तर पर भी उतना ही सत्य है। समय की पाबंदी के साथ व्यक्तित्व का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू 'अनुशासन' है। अनुशासन के बिना पाबंदी/समय-निष्ठा नहीं मिल सकती। समय की पाबंदी की संस्कृति ही अनुशासन की संस्कृति को जन्म देती है। एक व्यक्ति, जिसे पाबंद होना है, उसे स्वयं ही अनुशासित होना पड़ेगा। स्व-अनुशासन जब एक बार आप में पैदा हो जाता है तो उसका आस-पास की सभी चीजों पर प्रभाव पड़ता है। यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि एक देश या राष्ट्र, जहाँ लोग पंक्चुअल या समय-निष्ठ हैं वहाँ स्वतः ही सब चीजें/मशीनें/ट्रेन/प्लेन आदि बड़ी सुगमता से समयानुसार चलने लगते हैं। रास्ते में जो छोटी-मोटी बाधाएँ या रोड़े आते हैं, वे स्वतः ही धीरे-धीरे समतल हो जाते हैं। काउंटर पर भीड़ अपने आप से लाइन में बदल जाती है। गड़बड़-सड़बड़ की जगह नियम-कानून और करीने से काम होने लगता है। मीटिंग आदि में जो विचार-विमर्श होता है, उसमें से कुछ निष्कर्ष निकलकर आता है।

उस अध्याय में, जहाँ हमने पढ़ने के सही तरीके बताए हैं, वहाँ पर हमने यह भी बताया है कि समय ही पैसा है। समय-पाबंदी का जो फलन है वह हमारी बचत है और इस करेंसी (रुपए-पैसे) का उत्पादक इस्तेमाल है। सनकी-से-सनकी व्यक्ति भी यह जानता है कि यदि हम अपने धन का सही उपयोग करने

के साथ-साथ उसकी यथाशक्ति बचत करें तो हमारा मुनाफा बढ़ सकता है और हम धनवान् हो सकते हैं। इस सिद्धांत को यदि हम अपनी करेंसी, जिसे 'समय' कहते हैं, उस पर लागू करें तो समय-निष्ठा का महत्त्व समझ में आएगा।

जब एक आदमी अपने अंदर पाबंदी की आदत डाल लेता है तो उसके परिणाम स्पष्ट हैं। दिन के वही 24 घंटे हमें अपने सब कामों के लिए पर्याप्त लगेंगे। उसी में काम, आराम और परिवार सबके लिए समय निकल आएगा। आपकी अपनी काम करने की दक्षता बढ़ जाती है। आपके ऊपर दबाव का स्तर घट जाता है। आपकी खुशियाँ कई गुना बढ़ जाती हैं और समाज व दोस्तों के बीच आपका मान-सम्मान बढ़ जाता है। आपकी एक समय-निष्ठ आदमी की तरह पहचान बन जाती है, जो कि अपने बरताव से 'मैं गंभीर हूँ', (I Mean Business) का संदेश देता है। ऐसे लोगों पर उसके सीनियर्स (वरिष्ठ अधिकारी) भरोसा करते हैं और मातहत उसकी ओर आदर एवं थोड़ा भय से देखते हैं। दूसरे लोगों के लिए जो डेड लाइन (अंतिम तिथि) न पानेवाली लगती है, वह उसके लिए सहज हो जाती है। उस समय तक काम करने में उसे कोई परेशानी नहीं होती है। लक्ष्यों को पा लेना ही सफलता का दूसरा नाम है। इस प्रकार आप देखेंगे कि समय-निष्ठा ऐसी चीज नहीं है, जिसके लिए आप कुछ खर्च करें। इसके बजाय समय का पाबंद होने से अनेक लाभ हैं। दूसरे शब्दों में, यह आपको कुछ देकर ही जाती है। तो आपको कौन रोक रहा है? आगे बढ़िए, समय की पाबंदी को अपनाइए और उसके तमाम फायदे उठाइए!

क्रोध : एक अमूल्य संसाधन—तो आप क्रोधित हैं। आपके पास हर शख्स और हर चीज से गुस्सा होने के ठोस कारण हैं। पिताजी आपकी बात समझते नहीं और माताजी को आपसे बहुत सारी अपेक्षाएँ हैं। भाई-बहन बहुत स्वार्थी हैं। आपका मन करता है कि सब चीजों में आग लगा दें या ऐसी जगह भाग जाएँ, जहाँ के लोग ज्यादा समझदार हों। हाँ, आप गुस्से में हैं। और मैं आपसे एक राज की बात बाँटना चाहता हूँ। यदि आप ऐसा महसूस कर रहे हैं तो आप अकेले नहीं हैं। हममें से अधिकतर लोग किसी-न-किसी समय ऐसा अनुभव करते हैं। तो आप इस मायने में 'क्रोध' क्लब के सदस्य हैं। अंग्रेजी में (Anger) शब्द में एक अक्षर और जोड़ देने से (Danger) बन जाता है। यह शक्तिशाली मानव-गुण हमेशा एक नकारात्मक गुण या अवगुण की तरह माना जाता है। पर क्या वास्तव में यह इतना बड़ा अवगुण या नकारात्मक गुण है? कोई ऐसी चीज, जिससे हम बचना चाहते हैं, दूर-दूर रहना चाहते हैं?

यदि हम ऐसी भावनाएँ, जैसे प्यार, सहानुभूति, खुशी आदि को अपने मन में से नहीं हटा सकते तो हम यह कैसे सोच लेते हैं कि हम क्रोध को अपने मन से हटा सकते हैं? मेरे कहने का तात्पर्य है कि क्रोध भी तमाम तरह की भावनाओं

में से एक है। अतः क्रोध को हटा देने की ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा इसलिए है कि 'क्रोध' किसी तरह का भार या लायबिलिटी नहीं है। यह एक संपत्ति है, गुण है। कैसे? यह मैं आपको बताता हूँ।

क्रोध एक सबसे सहज स्वाभाविक भावना है, जो व्यक्ति को पहले से पता है। यह एक ऐसी भावना है, जो मनुष्यों में और पशुओं में समान रूप से पाई जाती है। क्रोध एक ऐसी दशा है, जब हमारे अंदर के जानवर को कोई बाहरी खतरा महसूस होता है तो उभरकर बाहर आ जाती है। खतरे के अभाव से हमारे अंदर शारीरिक व मानसिक कई प्रकार की प्रतिक्रियाओं की एक जंजीर-सी बन जाती है। एड्रीनल ग्लैंड से एड्रीनलिन और नोराएड्रिनल का स्राव होने लगता है। इन हार्मोन को 'स्ट्रेस-हार्मोन्स' भी कहते हैं। इन दोनों के प्रभाव से हमारा शरीर और मन लड़ाई के लिए तैयारी करता है। हमारा दिल तेजी से धड़कने लगता है, जिससे कि मांसपेशियों को खून और ऑक्सीजन मिल सके। हमारी नसें लड़ाई के लिए तन जाती हैं। मन से भय की भावना निकल जाती है। हमारा फोकस और ध्यान बढ़ जाता है तथा हमारे शरीर की प्रणाली में दबाव की स्थिति में कार्य करने की योग्यता कई गुना बढ़ जाती है। इस प्रकार क्रोध एक ऐसी अंतर्निहित भावना है, जो हमारे शरीर और मन को उससे अधिकाधिक विपरीत परिस्थितियों में काम करने के लिए तैयार कर देती है।

इस प्रकार की प्रतिक्रिया हर जानवर में होती है, जब वह खतरा सूँघता है। इस घटनाक्रम के बाद क्या होता है, यही मनुष्यों और पशुओं में फर्क होता है। एक पशु इस क्रोध के कारण विप्लवकारी और विनाशकारी हो जाता है यानी वह अपने दुश्मन को मारने के लिए तैयार हो जाता है। एक क्रोधित बाघ अपने दुश्मन को चीरकर रख देगा। एक बार क्रोध का तूफान खत्म हो जाता है तो वह जानवर (शेर) फिर अपनी सामान्य स्थिति में आ जाता है। इस प्रकार की विस्फोटक क्रिया उन लोगों में भी होती है, जो अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं कर पाते। एक क्रोधित आदमी, जिसके हाथ में बंदूक है और जो अपना गुस्सा नियंत्रित नहीं कर पाता, वह किसी को भी मार सकता है। यह उसी तरह का काम है जैसे बाघ गुस्से में अपने दुश्मन को फाड़कर रख देता है।

संक्षेप में कहा जाए तो क्रोध हमारे अंदर एक विशाल ताकत पैदा करता है, जिसका कोई मुकाबला नहीं है। जैसाकि हम जानते हैं, ऊर्जा इस संसार का सबसे मूल्यवान् संसाधन है। इसका सीधा-सा मतलब यह हुआ कि वह भावना या इंस्टिंक्ट/जन्मजात प्रवृत्ति, जो हमारे अंदर ऊर्जा का संचार करती है, वह भी उतनी ही मूल्यवान् होगी। और यही क्रोध का महत्त्व है।

क्रोध द्वारा उत्पन्न ऊर्जा परमाणु शक्ति के बराबर होती है। यदि परमाणु शक्ति बिना कंट्रोल किए निकल जाए तो वह ऐसा विनाश ला देती है, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। तथापि, यदि उसे नियंत्रित करके और चैनेलाइज किया जाए तो वह इतनी ऊर्जा उत्पन्न करती है, जो लाखों घरों को रोशन कर देती है और तमाम उद्योग उससे चलते हैं। इससे हमारा विकास भी बढ़ता है। नाभिकीय ऊर्जा अपने आप में न अच्छी है और न बुरी है। इसको नियंत्रित करके सही तरह से इस्तेमाल करना ही उसे इतना लाभकारी बनाता है।

इसी प्रकार से गुस्सा या क्रोध भी है। क्रोध से हमारे अंदर जो कच्ची ऊर्जा का उत्पादन होता है, उसे कंट्रोल करके सही रास्ते पर लाना और उसे अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करना ही अक्लमंदी है। इस तरह से उसका सकारात्मक इस्तेमाल करना, किसी व्यक्ति को और उसके आस-पास की दुनिया को बदल सकता है। मैं दो उदाहरणों द्वारा इसकी व्याख्या करना चाहूँगा—

क्रोधित प्रधानमंत्री, कौटिल्य और मौर्य साम्राज्य—कौटिल्य, जो 'चाणक्य' और 'विष्णुगुप्त' के नाम से भी जाने जाते हैं, वे पाटलिपुत्र (आधुनिक भारत में बिहार की राजधानी पटना) में 350 ईसा पूर्व में पैदा हुए थे। इतिहास के अनुसार, वह बहुत ही प्रखर विद्वान् थे, पर काफी कुरूप थे। उस समय भारत में सबसे शक्तिशाली साम्राज्य नंद वंश का था, जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी, जो वर्षों से या दीर्घकाल से चली आ रही थी। नंद साम्राज्य के राजा बहुत स्व-केंद्रित और अहंकारी हो गए थे।

एक दिन राजा धननंद, जिसे अपनी दुष्टता के कारण उसकी प्रजा पसंद नहीं करती थी, या यों कहा जाए कि घृणा करती थी, ने अपने प्रधानमंत्री को बुलाया और आम जनता के सामने उसका बहुत अपमान किया। प्रधानमंत्री क्रोध से उबलने लगा, पर उसने अपने ऊपर नियंत्रण रखा और सभा में से उठकर चला गया। किसी और चीज से अधिक प्रधानमंत्री को यह लगा कि एक राजा, जो अपनी प्रजा के प्रति उदासीन है, उसे तथा उसके वंश को हटाने का समय आ गया है और उसकी जगह एक नया राजा और नई प्रणाली आनी चाहिए।

प्रधानमंत्री ने एक युवा ब्राह्मण को देखा, जो बहुत कुरूप था। उसके हाथ में लोहे की एक छड़ थी। इस छड़ी के तेज धारवाले सिरे के साथ, वह बड़ी-बड़ी घासवाले पौधों की जड़ों को उखाड़कर उसकी जड़ों में मट्ठा डाल रहा था। मंत्री को जिज्ञासा हुई—यह अजीब-सा ब्राह्मण क्या अजीब-सा काम कर रहा है?

"हे बुद्धिमान ब्राह्मण! आपको मेरा प्रणाम! मैं इस राज्य का प्रधानमंत्री हूँ।" मंत्री ने कहा।

“प्रणाम, प्रधानमंत्री।” उसने उत्तर दिया और फिर से अपने काम में जुट गया।

“क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ? और यह कि आप यह काम किस कारण से कर रहे हैं?”

“प्रधानमंत्री, मैं कौटिल्य हूँ।” उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया, “मैं इस मैदान में नंगे पाँव चल रहा था, तभी इस घास की ठूँठ मेरे पैरों में लग गई और मुझे घायल कर दिया। इस वजह से मैं इस घास की ठूँठ को काट रहा हूँ। आपको पता है कि हाथी-घास तब तक नहीं खत्म नहीं होती जब तक कि उसे जड़ को खत्म न कर दिया जाए।”

“हाँ, सो तो है।”

“क्योंकि इस घास ने मुझे घायल कर दिया है, अतएव मैं इसकी जड़ों में मट्ठा डाल रहा हूँ, जिससे यह दुबारा न उगे। मट्ठा जड़ों में डालने से इसकी जड़ें मर जाएँगी और इस तरह से यह समूल नष्ट हो जाएगी।”

प्रधानमंत्री ने उस युवा ब्राह्मण की ओर आश्चर्यचकित होकर देखा। उन्होंने सोचा कि यह भी एक व्यक्ति है, जो एक घास के झुरमुट को नष्ट करने के लिए इतना प्रयत्न कर रहा है, जिसने उसके पाँव को घायल किया। उसे तभी अपने सवाल का जवाब मिल गया था।

अगले दिन प्रधानमंत्री ने कौटिल्य को महाराज धननंद के सामने दरबार में पेश किया। उन्होंने महाराजा से उसका परिचय एक महान् विद्वान् और बहुत ही योग्य पुरुष के रूप में कराया। पर जैसाकि आशा थी, राजा ने दरबार में आसन देने के बजाय उसे बहुत बुरा-भला कहा और दरबार से निकाल दिया; क्योंकि वह कुरूप था।

अपमानित और क्रुद्ध कौटिल्य दरबार से बाहर निकल गया और तभी उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक वह नंद वंश का राज्य खत्म नहीं कर देगा, वह अपनी चोटी नहीं बाँधेगा (चैन से नहीं बैठेगा)। अब उसके जीवन का एक ही ध्येय था—नंद वंश और उसके राज्य का खात्मा! नंद वंश का तख्ता पलटने के लिए उसने जिसे चुना, उसका नाम था—चंद्रगुप्त मौर्य।

उसके बाद की बात सब जानते हैं, इतिहास में है। चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश को उखाड़ फेंका और मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। मौर्य साम्राज्य का शासन दुनिया में सबसे सफल शासन माना गया। उसने भारत को तमाम कुशल शासक दिए। चंद्रगुप्त के अलावा समुद्रगुप्त, जिसे ‘भारत का नेपोलियन’ कहा जाता है व अशोक साम्राट् (महान् अशोक)। कौटिल्य भी एक बहुत बड़ा होशियार

राजनीतिज्ञ बना, जिस पर भारत को गर्व रहा है। उसकी लिखी हुई दो महान् पुस्तकें 'अर्थशास्त्र' और 'नीतिशास्त्र' को उनके द्वारा पढ़ा जाना अति आवश्यक है, जोकि राजनीति या प्रशासन में सफल होना चाहते हैं।

जहाँ तक राजा नंद के क्रोधित प्रधानमंत्री का सवाल है, मुझे पता नहीं कि उनका क्या हुआ। पर एक चीज आईने की तरह साफ है। और वह यह कि यदि प्रधानमंत्री नंद राजा के सामने अपना गुस्सा प्रकट कर देता तो अवश्य ही वह अपमानित करके दरबार से निकाल दिया जाता और जेल में डलवा दिया जाता और फिर उसका सिर कलम कर दिया जाता। प्रधानमंत्री का अपमान के घूँट को पी जाना, अपने गुस्से को काबू में रखना और फिर उस क्रोध से जो ऊर्जा पैदा हुई, उसे उस समस्या का हल निकालने के लिए लगाने से ही नंद वंश के क्रूर राज्य का अंत हुआ और मौर्य वंश की स्थापना हुई।

क्रोधित बैरिस्टर और ब्रिटिश राज से भारत की स्वतंत्रता—यह सन् 1893 की बात है, जब 24 वर्ष का एक युवा दक्षिण अफ्रीका में एक ट्रेन पर चढ़ा। उसका नाम मोहनदास करमचंद गांधी था। वह एक भारतीय बैरिस्टर (वकील) था, जिसकी शिक्षा इंग्लैंड में हुई थी। अंग्रेजों के लिबास में वह ट्रेन के एक फर्स्ट क्लास डिब्बे में चढ़ा और बैठकर अखबार पढ़ने लगा। पीटर मैरिट्सबर्ग स्टेशन पर कंडक्टर और कुछ अंग्रेज यात्रियों ने उससे कहा कि वह थर्ड क्लास के डिब्बे में चला जाए। जब उसने प्रतिवाद किया और बताया कि उसके पास प्रथम श्रेणी का टिकट है तो उसे बलपूर्वक डिब्बे से उतार दिया गया और उसका सामान भी बाहर प्लेटफॉर्म पर फेंक दिया गया।

मेरा अनुमान है और आप सब भी इस बात से सहमत होंगे कि किसी आदमी के पास वैध टिकट होते हुए भी उसे डिब्बे से बाहर उतार दिया जाए और इस प्रकार से अपमान किया जाए तो उसे क्रोध आना स्वाभाविक है। व्यक्तिगत रूप से मैं भी जानता हूँ कि मुझे भी इस बात पर खूब क्रोध आता, यदि मेरे साथ ऐसा होता। तो मैं यह मानकर चलता हूँ कि गांधीजी को भी क्रोध तो आया ही होगा। पर गांधीजी कोई साधारण व्यक्ति तो थे नहीं। उन्होंने अपने क्रोध को काबू में रखा तथा शेष यात्रा किसी तरह से पूरी की। इस प्रक्रिया में उन्होंने कई और भी परेशानियाँ झेलीं, जैसे कई होटलों में उन्हें इसलिए ठहरने नहीं दिया गया कि वह अश्वेत (काले) थे।

जितना ही मोहनदास ने वहाँ रंगभेद और जातिभेद देखा और अनुभव किया, उतने ही वे उस प्रणाली के घोर विरोधी होते गए। गांधीजी डरबन में एक कांट्रेक्ट के तहत थे और कांट्रेक्ट खत्म होने पर उन्हें भारत लौटना था, पर वह भारत नहीं लौटे। उसके बजाय वह दक्षिण अफ्रीका में ही रहे और प्रवासी भारतीयों

को एकत्र करके, प्रेरित करके एक ताकतवर राजनीतिक शक्ति बनाई। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद और जातिभेद के खिलाफ बीज गर्भित किया।

शुरुआती काम करने के बाद उन्होंने अपने क्रोध का प्रयोग भारत से ब्रिटिश शासन को हटाने के लिए और भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए किया। पर अहिंसक रूप में। और एक बार फिर, जैसाकि आपको पता है, बाकी सब इतिहास है। वह युवा बैरिस्टर, जिसे ट्रेन पर से जबरन उतार दिया गया था, दक्षिण अफ्रीका में साम्राज्यवाद और भारत में भेदभाव व छुआछूत के खिलाफ एक बहुत बड़ी ताकत बन गए, संभवतः विश्व में। अपने क्रोध को एक सही रास्ते पर डालने से और उसे सही दिशा प्रदान करने से उस क्रोध की शक्ति ने इतना बड़ा जन-आंदोलन शुरू कर दिया—गुलामी और शोषण के खिलाफ, जैसाकि ब्रिटिश- भारत के इतिहास में कभी नहीं हुआ था। और अंततोगत्वा महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत को स्वतंत्रता मिली।

मोहनदास करमचंद गांधी—वह बैरिस्टर, जिसे गाड़ी में से उतार दिया गया था, ने भारत को विदेशी गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराकर एक ऐसे स्वतंत्र-युग में पदार्पण कराया, जिस स्वतंत्रता का आज हम सब लोग आनंद उठा रहे हैं।

तमाम लोग हैं, जिनका उदाहरण दिया जा सकता है। यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक युवा आदमी और औरत अपने गुस्से को कंट्रोल करके किसी राष्ट्र या सभ्यता का भाग्य बदल दे। जरूरी यह है कि क्रोधित आदमी इस बात को समझे कि इस तरह की भावना स्वाभाविक है और यह हमें एक अवसर प्रदान करती है, न कि यह एक समस्या है।

तो यह तथ्य कि आप क्रोधित हैं, यह एक बड़ा अवसर है। अतः अब आप अपने को कमरे में बंद करके सोचें, विचार करें, मनन करें। अपने क्रोध के कारणों को नोट करें तथा एक विस्तृत युद्ध की योजना बनाएँ। अपने को और अपने अंदर की ताकत को अपना लक्ष्य प्राप्त करने में लगाएँ। जब आपकी अभिलाषाओं को क्रोध की शक्ति मिल जाएगी तो वह उन ऊँचाइयों को छुएँगी, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

राष्ट्रों की सफलता की कहानियाँ —डर के आगे जीत है!

पिछले अध्यायों में सफलता के लिए एक नक्शा तैयार करने के बाद अब समय आ गया है कि हम इसको कुछ उदाहरणों द्वारा और समझें। सफलता सामूहिक भी हो सकती है और व्यक्तिगत भी। हम कुछ राष्ट्रों के बारे में बात करते हैं, जोकि विनाशकारी परिस्थितियों को झेलने के बाद विजयी होकर उभरे हैं। पूरी दुनिया में अशांति व्याप्त थी। सामूहिक पागलपन ने मानवता पर प्रहार किया और उसने द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म दिया। जबकि सारा यूरोप, जापान और चीन (एशिया में) युद्धभूमि में थे, अमेरिका निरपेक्ष देश था। तथापि, युद्ध की गंध सारी हवा में फैल रही थी और प्रशांत महासागर को पार करके अमेरिका के तट को छू रही थी।

रविवार 7 दिसंबर, 1941 की सुबह अमेरिका की नौसेना का सारा बेड़ा पर्ल हार्बर में खड़ा था। शाही जापान और अमेरिका के बीच शांति- वार्त्ता चल रही थी। आशा के इस वातावरण में विनाश की बिजली गिरी। बिना किसी चेतावनी के और तमाम बल के साथ अमेरिका के प्रशांत महासागर के नौसैनिक बेड़े पर जापान ने हमला बोल दिया। अमेरिकी नौसेना पूरी तरह ध्वस्त हो गई। चार शक्तिशाली लड़ाकू जलयान डूब गए और अन्य चार बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गए। 2,042 अमेरिकी फौजी मारे गए और 1,282 घायल हो गए। यह उनकी बहुत करारी और अपमानजनक हार थी। जापान ने वहाँ आक्रमण किया था, जहाँ उन्हें सबसे ज्यादा नुकसान हुआ था। शुरु में पूरे राष्ट्र को बहुत धक्का पहुँचा और सभी बहुत निराश और उदास हो गए।

अमेरिका के लिए युद्ध शुरु होने से पहले ही खत्म हो गया था। इस निराशाजनक स्थिति में प्रेसीडेंट रूजवेल्ट ने अमेरिका को जिताने की तैयारी शुरु कर दी। पूरा राष्ट्र जोर-शोर से युद्ध की तैयारी में लग गया। हवा का रुख बदल गया और इसके पहले कि किसी को पता चलता, अमेरिका विजय-पथ पर था और युद्ध का अंत हो गया। 2 दिसंबर, 1945 को जापान ने, जिसने युद्ध का पहला दौर जीत लिया था, बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया। और

विश्व का शक्ति-समीकरण (पॉवर-इक्वेशन) हमेशा के लिए बदल गया। इस विजय के बाद अमेरिका ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और विश्व की निर्विवाद महान् शक्ति बन गया।

जापान—जापान की कहानी इससे भी ज्यादा प्रेरणादायक तथा कहीं ज्यादा मर्मस्पर्शी है। यह विजयी से पराजित और फिर विजयी होने की कहानी है। यह एक असाधारण त्याग और साहस की कहानी है, जो उनकी अपनी मातृभूमि (या पितृभूमि, जैसा जर्मन लोग कहते हैं) से ली गई है।

पर्ल हार्बर में अपनी जीत के बाद अमेरिका के साथ हुई लड़ाई में उसे भारी क्षति उठानी पड़ी। जब अमेरिकी नौसेना के युद्धपोत जापान के तट पर थे और उसे चारों ओर से घेर लिया गया था, तब जापानियों ने ऐसे साहस और त्याग का प्रदर्शन किया, जोकि अभी तक दुनिया ने नहीं देखा था। जापानी आत्मघाती (Kamikaze) पायलट अपने हवाई जहाजों में अत्यंत घातक विस्फोटक भरकर अपने प्लेन अमेरिकी युद्धपोतों पर क्रैश कर देते थे और वे नष्ट हो जाते थे। इस तरह से उन्होंने अमेरिकी नौसेना को भारी क्षति पहुँचाई।

इसकी खबर जब अमेरिका पहुँची तो उनके नेताओं ने जापान पर दो परमाणु बम गिराने का भयानक निश्चय किया। 6 अगस्त, 1945 को अमेरिकी विमान B-52, जिसका नाम 'इनोला गे' था, के द्वारा पायलट पाल टिब्बेट ने 'लिटिल ब्वाय' नामक एटम बम हिरोशिमा (जापान) पर गिरा दिया। उसके बाद धुएँ के जो मशरूम क्लाउड छाए, वह द्वितीय विश्व युद्ध की सबसे भयानक तसवीरें थीं। उसके तीन दिन बाद नागासाकी पर 'फैट मैन' नाम का दूसरा परमाणु बम गिरा दिया गया। परमाणु बम के इन दो हमलों ने जापान के दो मुख्य औद्योगिक शहरों को पूरी तरह नष्ट कर दिया। 2 लाख से ज्यादा लोग, जिनमें से अधिकतर नागरिक थे, मारे गए। जापान की औद्योगिक क्षमता घटकर लगभग शून्य रह गई। इसके बाद तो जापान के लिए युद्ध लगभग समाप्त-सा हो गया।

एक समय की सबसे बड़ी शाही फौज और औद्योगिक शक्ति हमेशा के लिए ध्वस्त हो गई और कमजोर पड़ गई थी तथा अपमानित हुई थी। कुछ साल पहले अपने दुश्मन पर किए गए हमले और विजय के बाद यह उनकी करारी हार थी। जले पर नमक छिड़कने के लिए जापान को एक बहुत ही अपमानजनक संधि पर अपने विरोधी के साथ हस्ताक्षर करने पड़े, जिसके तहत भविष्य में वह अपनी सेना नहीं तैयार कर सकता था। तथा इसके बाद वह अमेरिकी सेना के अधीन और संरक्षण में रहेगा। अंततः द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान की ताकत घटकर 'नहीं' के बराबर रह गई थी। महान्-से-महान् भविष्यद्रष्टा यह नहीं बता पाया था कि जापान इस तरह से एक राष्ट्र के रूप में आर्थिक रूप में इतना

कमजोर पड़ जाएगा। पर जापानी बहुत ही मजबूत थे और हैं। उन्होंने निश्चय किया कि अपना अतीत पीछे छोड़कर अब वे भविष्य पर ध्यान देंगे। और उन्होंने ध्यान दिया भी।

जल्द ही जापान एक विशाल औद्योगिक और इलेक्ट्रॉनिक देश के रूप में उभरकर दुनिया के सामने आया। अब वह इतनी बड़ी आर्थिक शक्ति बन गया था, जिसे लोग भयमिश्रित-सम्मान की दृष्टि से देखने लगे थे। दुनिया में वह अकेला राष्ट्र था, जो अपने दिल पर दो परमाणु बम के हमलों को झेलने के बाद अपने सामान की गुणवत्ता और तकनीकी उत्कृष्टता के लिए जाना जाने लगा। वह दुनिया की सबसे अग्रणी आर्थिक शक्ति बन गया तथा उसकी कंपनियाँ और उत्पाद सारी दुनिया में, खासकर अमेरिका में, छा गए। आज भी इलेक्ट्रॉनिक्स और ऑटोमोबाइल (कार आदि) क्षेत्र में जापानी कंपनियाँ विश्व में अग्रणी हैं तथा जापान दुनिया का सबसे प्रशंसनीय राष्ट्र है और सबसे समृद्ध देश है। आप इस बात को भी याद रखें कि यह उन्होंने बहुत कम संसाधनों के और भूचाल-संवेदन क्षेत्र में स्थापित होते हुए प्राप्त किया है। मैं यहाँ विश्व युद्ध-II के बाद के जापान का इतिहास लिखने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ। मैं तो केवल यह कह रहा हूँ कि यदि कोई राष्ट्र और उसके लोग सफलता पाने के लिए कटिबद्ध हों तो वे क्या कुछ नहीं पा सकते! इसके बावजूद कि दो अणु बमों के हमलों ने उन्हें नेस्तनाबूद कर दिया था।

जर्मनी—जब विश्व युद्ध II शुरू हुआ तो सबको उम्मीद थी कि जर्मनी ही जीतेगा। जर्मन युद्ध-मशीनरी बहुत ही कुशल थी और उनकी तकनीक अन्य देशों से कहीं ज्यादा उन्नत, बहुत विस्तृत थी और उनकी मारक क्षमता भी बहुत अधिक थी। 'जर्मन ब्लिट्जक्रीग' (बिजली की तरह तेजी से अपने दुश्मन पर हमला बोल देना) कुछ ऐसी चीज थी, जिसे दुनिया ने कभी पहले नहीं देखा था। 1 सितंबर, 1939 की सुबह जर्मनी ने अचानक टैंकों द्वारा हमला बोलकर अपने पड़ोसी देश पोलैंड को रौंद डाला। शीघ्र ही यूरोप के तमाम छोटे-छोटे राज्य भी उसके कब्जे में आ गए। 25 जून, 1940 को फ्रांस ने भी समर्पण कर दिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हिटलर की सेनाएँ शीघ्र ही पूरे यूरोप पर छा जाएँगी और अपना आधिपत्य जमा लेंगी। मतलब यह कि प्रथम विश्व युद्ध के केवल 22 साल बाद जर्मन सेना इतनी चमत्कारी सैन्य क्षमता विकसित कर लेगी, यह किसी भी राष्ट्र के लिए एक प्रेरणा है।

ब्रिटेन ही केवल एक ऐसा राष्ट्र था, जो जर्मनी के विरुद्ध खड़ा रहा। और ऐसा सर विंस्टन चर्चिल, जो उसके प्रधानमंत्री थे, के अद्वितीय नेतृत्व में हुआ। यूनाइटेड किंगडम में जर्मनी के बीच भीषण लड़ाई छिड़ी। उन्होंने काफी समय तक मोरचा लिया और जब अमेरिका ने एक्सिस पॉवर के विरुद्ध उसका साथ देने का

फैसला किया तो उसमें नई जान पड़ गई और हिटलर से लड़ने की शक्ति आ गई। कहावत है कि किस्मत बहादुरों का साथ देती है, और ब्रिटेन इसका कोई अपवाद नहीं था। हिटलर ने एशिया (रूस) पर आक्रमण करने का गलत समय (सर्दियों का मौसम) चुना और उनकी सेनाओं ने मुँह की खाई और वहीं बर्फ व ठंड से पूरी सेना पीछे भागते समय स्वतः मारी गई। तत्पश्चात् मित्र राष्ट्रों की सेना तेजी से विजय की ओर अग्रसर होती गई।

25 अगस्त, 1994 को फ्रांस को आजाद करा लिया गया तथा अप्रैल 1945 में जब मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ बर्लिन में घुसीं, तब हिटलर ने अपनी पत्नी एवा ब्राउन के साथ बंकर में आत्महत्या कर ली और उसके बाद ही विश्व युद्ध समाप्त हुआ। 6 अक्तूबर, 1949 को जर्मनी के दो हिस्से हो गए—ईस्ट (पूर्व) और वेस्ट (पश्चिम)। 'बर्लिन की दीवार' ने परिवारों और पीढ़ियों को 40 साल तक के लिए अलग कर दिया। उसके बाद जब दोनों देशों (पूर्वी और पश्चिमी के) ने मिलकर अपने नागरिकों के निश्चय को ऐतिहासिक फैसले में बदल दिया कि दोनों जर्मनी फिर से एक होंगे तो 12 नवंबर, 1989 को बर्लिन की दीवार ढहा दी गई। आज जर्मनी फिर से दुनिया के अमीर देशों में गिना जाने लगा है और उसकी तकनीकी तथा इंजीनियरिंग कौशल का पूरी दुनिया लोहा मानती है।

इस तरह की अविश्वसनीय प्रगति के अन्य कई उदाहरण हैं—जैसे कि 'एशियन टाइगर इकोनॉमीज' (इंडोनेशिया-थाइलैंड आदि), जिनका उतनी ही तेजी से 1997-1998 में पतन हो गया। ऐसा लगता था कि सदैव के लिए सपना टूट गया। पर टाइगर आर्थिक शक्तियाँ फिर से पटरी पर आ रही हैं और उनकी वृद्धि का ग्राफ ऊपर की ओर चढ़ रहा है। यही कहानी चीन की है, जो अफीम की लड़ाई में ब्रिटेन द्वारा परास्त कर दिया गया था और फिर जापानियों से विश्व युद्ध में हारा था। और एक कृषि-मूलक आर्थिक शक्ति की दौड़ में पिछड़ गया था। वही चीन इस समय दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति है, जिसकी वार्षिक प्रगति की पर 11 प्रतिशत से ऊपर है। आज चीनी उत्पाद दुनिया भर में छाए हुए हैं (भारत में भी)। और एक समय का पिछड़ा हुआ देश आज दुनिया की बड़ी सैन्य व आर्थिक शक्ति तथा खेल-कूद की महान् शक्ति के रूप में जाना जाता है।

व्यक्तियों की सफलता की कहानी

अब्राहम लिंकन—अब्राहम लिंकन, जो अमेरिका के सोलहवें और संभवतः सबसे सम्मानित राष्ट्रपति थे, का जन्म एक बहुत गरीब घर में 12 फरवरी, 1809 को हार्डिन काउंटी, केंटुकी में हुआ था। उनके पिता टॉमस लिंकन एक बढ़ई थे।

उनके जन्म के कुछ ही समय बाद उन लोगों को केंटुकी से इंडियाना स्थानांतरण करना पड़ा। एक ऐसा क्षेत्र, में जो जंगली और बीहड़ कहा जा सकता था, वे लोग लकड़ी के एक केबिन, जिसकी फर्श कच्ची थी, में रहते थे। वे अपनी उदर-पूर्ति के लिए मक्का और सब्जी उगाते थे।

बचपन में लिंकन की बहुत कम या नहीं के बराबर स्कूली शिक्षा हुई। वह भी टुकड़ों में। अब्राहम की शिक्षा एक साल की हुई थी। विद्यार्थी के रूप में उनके पास स्लेट या पेंसिल कुछ भी नहीं था। लिखने के लिए वह जमीन और पेंसिल के लिए छड़ी का इस्तेमाल करते थे।

अब्राहम अपनी माता, जिनका व्यक्तित्व बहुत मजबूत था, से जुड़े हुए थे और उनसे प्रभावित थे। लेकिन उनका वह सहारा भी 5 अक्तूबर, 1818 को टूट गया, जब एक रहस्यमय बीमारी से उनकी माँ की मृत्यु हो गई। उस महामारी का नाम 'मिल्क सिकनेस' या दूध की बीमारी थी। उस समय वह केवल 9 वर्ष के थे।

अब्राहम बढ़कर युवावस्था में एक लंबे कद-काठी के मजबूत व्यक्ति बने। 21 साल की उम्र तक वह शारीरिक श्रम द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते रहे। कोई औपचारिक शिक्षा न होने के बावजूद वह अपने आप पढ़ते रहे और बाद में किताबें माँग-माँगकर कानून (लॉ) की पढ़ाई करते रहे। अंततोगत्वा उन्हें सन् 1836 में वकालत करने का लाइसेंस मिल गया और शीघ्र ही वह इलिन्वाय, जहाँ वह रहते थे, के सबसे अच्छे वकीलों में गिने जाने लगे।

अब्राहम लिंकन को तमाम असफलताओं का सामना करना पड़ा, जिनमें से कुछ इस प्रकार थीं—

1832—नौकरी से हाथ धोया और राज्य विधानसभा का चुनाव हार गए।

1833—व्यवसाय फेल हो गया।

1835—प्रेमिका की मृत्यु हो गई।

1836—नर्वस ब्रेक-डाउन हो गया।

1838—स्पीकर के पद के लिए चुनाव हारे।

1843—कांग्रेस में नामांकित नहीं हुए।

1848—कांग्रेस में पुनः नामांकन नहीं हुआ।

1849—लैंड ऑफिसर के पद के लिए रिजेक्ट हो गए ।

1854—अमेरिकी सीनेट के लिए चुनाव हारे।

1856—उपराष्ट्रपति पद के लिए नामांकित नहीं हुए।

1858—अमेरिकी सीनेट के लिए एक बार फिर हार गए।

1860—अमेरिका के सोलहवें राष्ट्रपति चुने गए।

अगर यह भी आपको प्रभावित नहीं करता तो फिर कुछ भी (असर) नहीं करेगा। यदि अब्राहम लिंकन जैसा व्यक्ति अमेरिका का राष्ट्रपति बन सकता है तो आप भी (अपने मेहनत और दृढ़ इच्छा-शक्ति से) डॉक्टर, इंजीनियर, कलाकार, खिलाड़ी—जो भी चाहें—बन सकते हैं। दुनिया में कोई भी काम कठिन नहीं है, न असंभव है। जैसा नेपोलियन ने कहा है, ''असंभव शब्द मूर्खों के शब्दकोश में ही पाया जाता है।''

लाल बहादुर शास्त्री—2 अक्तूबर, 1904 को रामनगर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश में पैदा हुए थे। उनका नाम लाल बहादुर श्रीवास्तव था। उनके माता-पिता बहुत गरीब थे और उनका बचपन बहुत कठिन व संघर्षमय था। उनके पिता शारदा प्रसाद पहले स्कूल-टीचर थे और बाद में इलाहाबाद में क्लर्क नियुक्त हुए। इस प्रकार भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के संपन्न जीवन की तुलना में उनका जीवन अभावों और विपन्नता में गुजरा था। छोटा कद, साधारण काठी और सीधे-सादे दिखनेवाले शास्त्रीजी का प्रधानमंत्री के रूप में चुना जाना, वह भी नेहरूजी के करिश्माई और सुंदर व्यक्तित्व के बाद, एक बहुत बड़ी घटना थी।

अपने विद्यार्थी जीवन में शास्त्रीजी को तमाम कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कहा जाता है कि रामनगर से बनारस स्कूल जाने के लिए नाव के लिए पैसे न होने के कारण वह गंगा नदी तैरकर पार करते थे और फिर स्कूल पहुँचते थे। उन्होंने पढ़ाई में बहुत परिश्रम किया और अंततः काशी विद्यापीठ से डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की।

उन्होंने भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लिया था और कुल मिलाकर ९ वर्ष जेल में रहे। भारत की स्वाधीनता के बाद वह कई महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन हुए। उत्तर प्रदेश में वह पहले संसदीय सचिव थे और बाद में पुलिस एवं परिवहन विभाग के मंत्री बने।

सन् 1951 में लालबहादुर शास्त्री कांग्रेस के महासचिव बने और इस पद से 1952, 1957, 1962 में कांग्रेस को आम चुनावों में अभूतपूर्व जीत दिलाई।

सन् 1951 में वह भारतीय संसद् के पहली बार सदस्य बने। सन् 1951 से 1956 तक वह रेल परिवहन मंत्री रहे। इस पद से उन्होंने तमिलनाडु में अखिल्लूर में रेल हादसे में 144 लोगों की मौत की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए इस्तीफा दे दिया था।

सन् 1957 में फिर एक बार भारत की जनता उन्हें आम चुनाव में चुनकर संसद् में लाई। तब उन्हें परिवहन एवं संचार मंत्री, और फिर बाद में वाणिज्य व उद्योग मंत्रालय का भार दिया गया। सन् 1961 में उन्हें गृह मंत्रालय का कार्यभार सौंपा गया, जो प्रधानमंत्री के बाद सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण मंत्रालय था, और अब तक है।

27 मई, 1964 को पं. जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद 9 जून, 1964 को उन्हें आजाद भारत का दूसरा प्रधानमंत्री बनाया गया। तथापि, शास्त्रीजी के लिए मुश्किलें या कहें तो राष्ट्र की कठिनाइयाँ, कम होने के बजाय और बढ़ गई थीं। अगस्त 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ गया था। यह उस समय हुआ, जब भारत खाद्य सामग्री की कमी से जूझ रहा था। तथापि, शास्त्रीजी ने अपने छोटे कद-काठी और शारीरिक शक्ति को झुठलाते हुए अपने चरित्र की दृढ़ता दिखाई। खाद्य-सामग्री की कमी को किसी तरह से काबू में लाते हुए भारत को 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया। युद्ध शुरू होने के 22 दिन के अंदर ही लाहौर, जो पाकिस्तान को दिलाया गया था, में भारतीय सेनाएँ प्रवेश कर गई। पाकिस्तान की करारी हार हुई और लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय नायक बन गए।

लाल बहादुर शास्त्री की कहानी यह दरशाती है कि किस तरह से धन की कमी, स्टेटस की कमी या पृष्ठभूमि की कमी और संबंधों या शारीरिक शक्ति या

सुंदरता की कमी उनके लिए कभी बाधा बनकर नहीं खड़ी हुई और वह अपनी मेहनत, ईमानदारी एवं आत्म-विश्वास के सहारे जीवन में इतना आगे बढ़े।

थॉमस एल्वा एडिसन—इनका जन्म 11 फरवरी, 1847 को मिलान, ओटावा, अमेरिका में हुआ था। उनकी औपचारिक शिक्षा बहुत कम हुई थी। अब्राहम लिंकन की तरह उनकी कुल स्कूली शिक्षा कुछ ही महीनों की थी। वह बहुत जिज्ञासु बच्चे थे और अपनी जिज्ञासु वृत्ति के चलते वह कई बार नटरक्ट या नुइसेंस वैल्यूवाला बच्चा कहलाते थे। मुझे उम्मीद है कि मेरी तरह आपने भी उनकी वह कहानी पढ़ी होगी कि एक बार मुरगी के अंडों पर बैठकर उन्होंने उसे सेकर चूजे निकालने की कोशिश की थी।

13 साल की उम्र में एडिसन ने काम करना शुरू कर दिया था। अपने पहले कार्य में वह रेलवे स्टेशन पर न्यूज बॉय के रूप में अखबार बेचते थे, साथ में बच्चों के लिए टॉफी-चॉकलेट भी बेचते थे। यह काम करते वक्त भी वह विज्ञान से संबंधित किताबें स्वयं पढ़ते रहते थे और शीघ्र ही उन्होंने टेलीग्राफी में दक्षता प्राप्त कर ली और बतौर टेलीग्राफर काम करने लगे। सन् 1868 में 21 वर्ष की उम्र में उन्हें उनका पहला पेटेंट बिजली से चलनेवाले वोट-रिकॉर्डर के लिए मिला। पर यह आविष्कार व्यापारिक रूप से सफल नहीं हुआ। इससे उनके ऊपर कोई फर्क नहीं पड़ा और वह अपनी खोजबीन और 'रिकॉर्डिंग' के काम में लगे रहे। उनका दूसरा अविष्कार 'यूनिवर्सल स्टॉक प्रिंटर' का था। उससे उन्हें 40,000 डॉलर की आय हुई। इसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। 1879 में उन्होंने बिजली से जलनेवाले बल्ब का आविष्कार किया और उसके साथ जो प्रणाली चाहिए थी, उसे उन्हें जनता के सामने पेश किया। इस काम के बाद उन्होंने 'एडिसन जनरल इलेक्ट्रिक' की स्थापना की, जो आज 'जनरल इलेक्ट्रिक' के नाम से जानी जाती है और तभी से विद्युत् युग का आरंभ हुआ।

उनके लिए विद्युत् युग की शुरुआत करना ही सबकुछ नहीं था। सन् 1870 से 1890 तक उन्होंने आधुनिक संगीत उद्योग का विकास करने में काम किया। उन्होंने अपने पूर्व-आविष्कार 'टिन-फॉयल फोनोग्राफ' का सुधार करना शुरू किया और उसे एक व्यापारिक सफलता बनाने के लिए उससे संबंधित प्रणाली का भी विकास किया, जिसे 'ग्रामोफोन' के नाम से हम जानते हैं। जैसेकि यह पर्याप्त नहीं था, सन् 1891 में उन्होंने मोशन पिक्चर (चलचित्र) की खोज की और इसके साथ ही मूवी उद्योग का जन्म हुआ। इस प्रकार वह आज के हॉलीवुड और बॉलीवुड के जन्मदाता बनें।

इससे भी संतुष्ट न होने पर वे आधुनिक स्टोरेज बैटरी बनाने की दिशा में लग गए। अंततोगत्वा वह अल्कलाइन स्टोरेज बैटरी बनाने में सफल हुए, जो आज तक का उनका सबसे लाभप्रद आविष्कार साबित हुआ।

औपचारिक शिक्षा के अभाव में ऊपर लिखित कहानी एक महान् सफलता को बयान करती हुई प्रतीत होती है। है ना? हाँ, यह मैं मानता हूँ कि एडिसन की कहानी एक सफल व्यक्ति की कहानी है। पर इसमें से हर एक सफलता कई असफलताओं पर आधारित थी। पर इसमें से हर एक सफलता एवं आविष्कार के पीछे कई असफल प्रयोग थे। उदाहरण के तौर पर, लाइट बल्ब के सफल होने से पहले एडिसन के प्रयोग लगभग 1,0000 बार असफल रहे। यह उनके 'लगे रहो' और धैर्य को एक श्रद्धांजलि है, जिसके बलबूते आज हम बिजली के बल्ब की रोशनी का आनंद उठा रहे हैं।

यदि हम उनके 10 हजार प्रयोगों को 10 हजार टेस्ट मानकर चलें तो हम कह सकते हैं कि वे 10 हजार बार फेल हो गए। तब जाकर कहीं यह कामयाबी हासिल हुई, जो आज पूरी दुनिया के लिए एक वरदान है। इसके विपरीत, आजकल हमारे यहाँ ऐसे नौजवान लड़के-लड़कियाँ हैं, जो परीक्षा में नंबर कम आने पर या फेल हो जाने पर आत्महत्या कर लेते हैं। एक बार मैंने एक कहानी पढ़ी थी। उस पर जरा गौर कीजिए—

सन् 1914 में वेस्ट आरेंज, न्यू जर्सी में बनी एडिसन की फैक्टरी में आग लग गई थी और वह लगभग नष्ट हो गई। उसमें उन्हें 20 लाख डॉलर का नुकसान हुआ। पर बीमा कंपनी से उन्हें केवल 2,38,000 डॉलर ही मिले; क्योंकि सीमेंट से बनी हुई फैक्टरी में आग लगने की संभावना कम आँकी गई थी। एडिसन का बहुत सारा काम उस रात की भयानक आग में स्वाहा हो गया था। जब आग धू-धूकर के जल रही थी, तब एडिसन का 24 साल का पुत्र अपने पिता को बदहवास खोज रहा था। अंततोगत्वा उसने देखा कि वह शांतिपूर्वक खड़े हुए आग में फैक्टरी को जलते हुए देख रहे थे। आग की रोशनी में उनका चेहरा चमक रहा था और बाल हवा में उड़ रहे थे।

''मेरा दिल उनके लिए दर्द से भर उठा।'' चार्ल्स ने लिखा—''वह 67 वर्ष के थे। वह अब कोई युवा नहीं थे और उनकी सालों की मेहनत यूँ ही स्वाहा हुई जा रही थी। जब उन्होंने मुझे देखा, वे चिल्लाए, 'चार्ल्स, तुम्हारी माँ कहाँ हैं?' जब मैंने उनसे कहा कि मैं नहीं जानता, तब उन्होंने कहा, 'उन्हें ढूँढ़ो और यहाँ पर ले आओ। इस तरह की कोई चीज वह जीवन में दुबारा नहीं देखेंगी।''

अगली सुबह एडिसन ने फिर उस जले हुए खंडहर को देखा और बोले, ''सर्वनाश का भी काफी महत्त्व है। हमारी सारी गलतियाँ और असफलताएँ भी उसके साथ ही जल गईं। भगवान् का शुक्र है, अब हम नए सिरे से काम शुरू कर सकते हैं।''

अग्निकांड के तीन हफ्ते बाद एडिसन ने दुनिया का पहला फोनोग्राफ बनाकर दुनिया को पेश कर दिया!

जे.के. राउलिंग (हैरी पॉटर की लेखिका)—जे.के. राउलिंग का जन्म 31 जुलाई, 1965 को ग्लाउसेस्टरशायर, इंग्लैंड में हुआ था। उनका जन्म का नाम जॉन राउलिंग था और पिता पीटर जेम्स राउलिंग थे तथा माता का नाम एन्नी राउलिंग था। उनका बचपन बहुत ही साधारण, औसत और बिना किसी बड़ी घटना के था, जैसाकि इंग्लैंड में आम लड़कियों का होता है। उनकी कॉलेज की पढ़ाई फ्रांस में पूरी हुई और फिर इंग्लैंड वापस आ गईं। यहाँ पर वे 'एम्नेस्टी इंटरनेशनल' के लिए दुभाषिए सेक्रेटरी के रूप में काम करने लगीं। जॉन काल्पनिक कहानियाँ लिखना और सुनाना पसंद करती थीं और उन्होंने 1990 में 'हैरी पॉटर' का प्रथम उपन्यास लिखना शुरू किया।

इसके शीघ्र ही बाद वह पुर्तगाल चली गईं और वहाँ विदेशी भाषा के रूप में अंग्रेजी पढ़ाना शुरू कर दिया। पुर्तगाल में ही वह एक पोर्चगीज पत्रकार जॉर्ज अरंटेस से सन् 1992 में मिलीं और उससे शादी कर ली। 27 जुलाई, 1993 को इस दपंती ने अपनी इकलौती पुत्री को जन्म दिया। पर, इसके बाद हालात बिगड़ गए और वे नवंबर 1993 में एक-दूसरे से अलग हो गए। इस बीच उनकी माँ की मृत्यु हो गई। विवाह भी खत्म हो गया और तब उनकी बेटी एक साल से कम की थी। अपनी छोटी सी बिटिया को लेकर वह दिसंबर 1994 में एडिनबर्ग, स्कॉटलैंड चली गईं।

बेरोजगारी और राजकीय मदद पर रह रहीं राउलिंग को क्लीनिकल डिप्रेशन हो गया और उसने एक बार आत्महत्या की भी सोची। इन सब कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने अपना उपन्यास-लेखन का प्रोजेक्ट नहीं छोड़ा, जो उन्होंने कई साल पहले शुरू किया था। उन्होंने पुराने किस्म के पुराने मैनुवल टाइपराइटर पर कैफे में बैठ-बैठकर अपने पहले उपन्यास की पांडुलिपि को पूरा किया। उस उपन्यास का नाम था—''हैरी पॉटर और दार्शनिक का पत्थर।'' तथापि, किसी उपन्यास को लिखना एक बात है और उसे छपवा पाना दूसरी बात है। पहले हैरी पॉटर उपन्यास को 12 प्रकाशकों को भेजा गया, जिन्होंने उसे छापने से मना कर दिया। इससे हतोत्साहित न होकर वह प्रयास करती रहीं और अंततोगत्वा 'ब्लूमैरी पब्लिकेशन' के एडिटर बैरी कनिंघम (इंग्लैंड) ने उसे छापने के लिए

स्वीकार कर लिया। इसके लिए उन्हें केवल 1,500 पौंड अग्रिम राशि के रूप में मिले। बाकी सब जैसा लोग कहते हैं, इतिहास है।

तब से हैरी पॉटर शृंखला की किताबों की 4,000 लाख प्रतियाँ छप चुकी हैं—यानी 40 करोड़। 'हैरी पॉटर' ग्लोबल ब्रांड अब लगभग 15 अरब डॉलर का है। अंतिम चार किताबें हैरी पॉटर टाइटल से, जो राउलिंग की कलम से निकली, वे दुनिया में सबसे तेजी से बिकनेवाली पुस्तकें थीं। राउलिंग की व्यक्तिगत संपत्ति भी अब अरबों डॉलर से ऊपर है। उनको तमाम पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजा गया है और आज उनकी गिनती दुनिया के जाने-माने लेखकों, अरबपतियों और लोकोपयोगी काम करनेवाली सेलीब्रिटी महिला के रूप में हैं। यह सब राउलिंग ने दस वर्ष की अवधि में अर्जित किया है, तमाम बाधाओं—जैसे घोर गरीबी, निराशा, शादी का टूटना और प्रकाशकों द्वारा पहली रचना के अस्वीकार किए जाने के बावजूद।

जे.के. राउलिंग की कहानी हमें यह बताती है कि तमाम कठिनाइयों के बावजूद मेहनत और लगन से क्या नहीं पाया जा सकता! ऐसा अति संभव है कि उन्होंने आसानी से वर्ष 1990-1995 की अवधि में माँ की मृत्यु, तलाक, नौकरी का छूट जाना तथा मानसिक बीमारी के चलते हताश होकर हथियार डाल दिए होते। यहाँ तक कि सन् 1995 के बाद भी वह अपनी पहली रचना के लगातार 12 बार खारिज हो जाने के बाद हताशा से अपना काम छोड़ सकती थीं। पर वे लगी रहीं। जे.के राउलिंग की कहानी हमें यह बताती है कि यदि हमें अपने ऊपर विश्वास है और अपनी योग्यता और काम पर भरोसा है तो दुनिया चाहे जितनी ही हमारे खिलाफ हो, अंततोगत्वा सफलता मिलकर रहेगी।

ओप्रा विन्फ्रे (OPRAH WINFREY)—ओप्रा गेल विन्फ्रे एक अनचाहे किशोर दंपती की संतान थीं, जो 29 जनवरी, 1954 को मिसीसिपी के ग्रामीण इलाके में पैदा हुई थीं। उसकी माता वर्निला ली एक घेरलू नौकरानी थी और पिता वर्नन विन्फ्रे उस वक्त, जब ओप्रा का जन्म हुआ था, फौज में थे। उसके अपने ही कथन के अनुसार ओप्रा का कभी औपचारिक रूप से अपने पिता-माता द्वारा पालन-पोषण नहीं हुआ। उसका जन्म उसके माता के पहले ही शारीरिक संबंध के फलस्वरूप हुआ था। उसके जन्म के बाद बहुत जल्द ही उसके माता-पिता का आपस में संबंध-विच्छेद हो गया। किसी भी तरह की माता-पिता की देखभाल के बैगर ही उसने शुरू के छह साल अपनी ननिहाल में ली के साथ अत्यंत गरीबी में बिताए।

वह इतनी अधिक गरीबी में रह रही थी कि उसे आलू के बोरे को काटकर बनाई हुई पोशाक पहननी पड़ती थी, जिसकी वजह से वह अपने दोस्तों और साथियों

के लिए उपहास की पात्र बनती थी। जैसेकि यह पर्याप्त नहीं था, उसकी नानी उसकी पिटाई कर देती थी, यदि वह कोई काम ठीक से नहीं करती थी या बदतमीजी करती थी। पर इन सबके बीच एक अच्छी रोशनी की किरण यह थी कि उसकी नानी ने तीन साल की उम्र के पहले ही उसे पढ़ना-लिखना सिखा दिया था। जब वह 6 साल की थी, तब वह अपनी माँ के साथ विसकांसिन चली गई।

यहाँ 6-14 साल के बीच 8 वर्ष की अवधि में उसे नरकीय जीवन से गुजरना पड़ा, जिसे 'चाइल्ड सेक्सुअल अब्यूज' कहा जाता है। ओप्रा के अपने कथनानुसार 9 साल की उम्र से ही अपने चचेरे/ममेरे भाई, चाचा और पारिवारिक मित्रों द्वारा उसका यौन शोषण हुआ। 14 साल की आयु में ओप्रा को गर्भ ठहर गया और बाद में उसने एक लड़के को जन्म दिया, जो शीघ्र ही मर भी गया। कोई भी सोचेगा कि जिस बच्चे ने इतनी तंगहाली और शोषण के बीच अपना बचपन गुजारा, वह जीवन में एक असफल व्यक्ति होकर रह जाएगा।

पर ऐसा नहीं होना था। 14 वर्ष की आयु में ओप्रा को अवसर मिला। उसकी माता ने उसे अपने पिता के पास रहने को भेज दिया। वर्नन बहुत कठोर, अनुशासनप्रिय थे और उन्होंने ओप्रा को पढ़ने के लिए भेज दिया। जल्द ही ओप्रा हाई स्कूल में 'आनर्स' स्टूडेंट बन गई। अपने हाई स्कूल की भाषण टीम की भी वह सदस्य बन गई और अपने स्कूल की सबसे अधिक लोकप्रिय छात्र चुनी गई। अपने वक्तृत्व-कौशल के दम पर उसे 'टेनेसी स्टेट यूनिवर्सिटी' में कम्युनिकेशन (संचार) का अध्ययन करने के लिए स्कॉलरशिप (छात्रवृत्ति) मिल गई। यूनिवर्सिटी में उसे 'मिस ब्लैक टेनेसी' का खिताब मिला। इसी समय में एक ब्लैक लोकल रेडियो WVOL ने उसे पार्ट-टाइम न्यूज-रीडर के रूप में रख लिया।

सन् 1983 में विन्फ्रे को शिकागो में एक टॉक-शो WLS-TV पर होस्ट करने के लिए बुला लिया गया। तथापि, विनफ्रे के 'टॉक-शो' में आने के बाद उसकी लोकप्रियता बढ़ गई और उसे उच्चतम रेटिंग मिल गई। बाद में इस शो का नाम 'ओप्रा विन्फ्रे शो' रख दिया गया और इसका समय बढ़ाकर एक घंटा कर दिया गया तथा उसका राष्ट्रव्यापी प्रसारण शुरू हो गया। शीघ्र ही वह अमेरिका का टॉप रेटेड दिन के समय का टॉक-शो बन गया।

आज एक स्त्री, जो बिन ब्याही माता-पिता की संतान थी, जिसे जन्म से ही इधर-उधर भटकना पड़ा—कभी माँ के पास से नानी के पास तो कभी पिता के पास, जिसका 9 साल में रेप हो गया, 14 साल की उम्र में माँ बन गई और जिसका बेटा भी शीघ्र ही मर गया; वह एक अंतरराष्ट्रीय विभूति

(सेलेब्रिटी), अरबपति, लोकोपकारी, पुस्तक-आलोचक, मीडिया-मुगल और एकेडमी अवार्ड के लिए नामांकित अभिनेत्री है। संभवतः वह दुनिया की सबसे ज्यादा प्रभावशाली स्त्री भी आँकी गई है।

ओप्रा विन्फ्रे की जीवन-कथा यह दरशाती है कि अभावग्रस्त एवं कठिनाई भरा जीवन, अवसर की कमी आदि भी उसके आड़े नहीं आई और अपनी 'कोर-स्ट्रेंथ' और यह इच्छा कि किसी भी मौके को पकड़कर आगे बढ़ा जाए, के सहारे वह आगे बढ़ती ही गई। आप इस बारे में सोचें, मंथन करें! क्या आपके हालात उसके हालात से कुछ भी नजदीक हैं? ऐसा नहीं है तो क्यों नहीं आप आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं?

स्टीफेन हॉकिंग—डॉ. स्टीफेन हॉकिंग की कहानी उतनी ही मर्मस्पर्शी है जितनी की प्रेरणादायक है। यह आदमी की इच्छाशक्ति की, विषम परिस्थितियों पर विजय की कहानी है। किसी भी हिसाब से डॉ. स्टीफेन हॉकिंग के जीवन की कहानी उन सबके लिए प्रेरणास्रोत है, जो सोचते हैं कि जीवन उनके लिए बहुत ही कठिन व घोर कष्टमय है। यह इसलिए है कि यह उस आदमी की कहानी है, जिसने पूर्ण पैरालिसिस (फालिज) के बावजूद अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति और लगन के सहारे प्रसिद्धि पाई, धन-अर्जित किया और पेशे में विश्व-विख्यात हुए।

स्टीफेन विलियम हॉकिंग का जन्म ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड में 8 जनवरी, 1942 को हुआ था। उनके पिता डॉ. फ्रैंक हॉकिंग एक रिसर्च बायोलॉजिस्ट (जीव-विज्ञान शोधकर्ता) थे और माता इसाबेल हॉकिंग एक राजनीतिक कार्यकर्ता थीं।

हॉकिंग बहुत ही विद्वान् और बुद्धिमान थे, पर कभी भी वह बहुत प्रखर विद्यार्थी नहीं माने गए थे। उन्होंने सन् 1962 में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से बी.ए. की डिग्री भौतिक-विज्ञान में हासिल की। तत्पश्चात् वे एस्ट्रानोमी—नक्षत्र-विज्ञान का अध्ययन करने लगे। जल्द ही वे ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी छोड़कर कैंब्रिज यूनिवर्सिटी चले गए, जहाँ उन्होंने थ्योरेटिकल एस्ट्रोनॉमी के साथ कॉस्मोलॉजी (ब्रह्मांड विज्ञान) का अध्ययन शुरू कर दिया। कैंब्रिज में ही उन्हें भयंकर बीमारी 'एमियोट्रॉफिक लेटरल सेक्लॉरिसिस' के लक्षण प्रकट होने लगे, जोकि एक मोटर म्यूरॉन बीमारी है और वह आदमी को पूर्णतया अपंग (फालिज से ग्रस्त है) बना देती है तथा अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है। तब वह केवल 21 वर्ष के थे। पर इन सब से हताश या निराश हुए, बगैर वह अपने पढ़ाई पर ध्यान लगाते रहे और अपनी डॉक्टरेट-पी-एच.डी. को पूरी किया। इस बीच में सन् 1965 में उन्होंने जेन वाइल्ड से विवाह किया। अपनी पी-एच.डी. पूरी करने के बाद 'डॉ. हॉकिंग गॉनविलेव केयल कॉलेज' में रिसर्च फेलो और बाद में प्रोफेशनल

फेलो बन गए। उसके बाद उन्हें कई उपलब्धियाँ मिलीं और 1974 में वह 'रॉयल सोसाइटी' के सबसे युवा सदस्य बन गए। सन् 1982 में उन्हें 'कमांडर ऑफ द ब्रिटिश एंपायर' बनाया गया। सन् 1989 में वह एक 'कंपेनियन ऑफ हॉनर' बन गए।

यह एक परीकथा की तरह था, सिवाय इसके कि हॉकिंग, ALS (ए.एल.एस.) बीमारी की वजह से सन् 1985 में पूरी तरह फालिज से ग्रस्त हो गए और चलने-फिरने से लाचार हो गए। उसी समय जेनेवा, स्विट्जरलैंड में एक कॉन्फ्रेंस के दौरान उन्हें निमोनिया ने जकड़ लिया तथा उनका जीवन बचाने के लिए एक आपातकालीन 'ट्रैकेटामी ऑपरेशन' किया गया। इससे उनके बोलने की शक्ति ही चली गई। अपने समय का एक महान् वैज्ञानिक और जीनियस व्यक्ति अब हमेशा के लिए व्हील-चेयर से बँध गया था। पर विरले साहस का प्रदर्शन करते हुए लोगों से संपर्क/बातचीत करने के लिए उन्होंने एक वॉयस (आवाज) सिंथेसाइजर (कंप्यूटर) का प्रयोग करना शुरू कर दिया।

इस दयनीय स्थिति में उन्होंने एक पुस्तक 'ए ब्रीफ हिस्टरी ऑफ टाइम' (काल का संक्षिप्त इतिहास) लिखा। ऐसे समय में यह पुस्तक लिखी गई, जब कोई अन्य व्यक्ति होता तो उसकी जीने की इच्छा ही खत्म हो जाती। यह पुस्तक 1 अप्रैल, 1988 में प्रकाशित हुई और देखते ही देखते एक 'बेस्ट सेलर' (सबसे अधिक बिकनेवाली पुस्तक) बन गई, जिससे उन्हें अपार प्रसिद्धि और धन मिला। (मैंने यह पुस्तक पढ़ी है। यह बहुत ही अद्भुत है और किसी भी व्यक्ति को, जिसे ब्रह्मांड के बारे में जिज्ञासा है, अवश्य पढ़नी चाहिए)। 'ब्लैक होल्स और बेबी यूनीवर्स' सन् 1993 में तथा 'दि यूनिवर्स इन ए नटशेल' सन् 2001 में प्रकाशित हुईं।

आज डॉ. हॉकिंग कैंब्रिज विश्वविद्यालय में गणित के लूकेशियान प्रोफेसर हैं। यह चेयर भूतकाल में ऐसी महान् विभूतियाँ, जैसे पाल डाइरैक, चार्ल्स वैबेज और सर आइजक न्यूटन द्वारा सुशोभित की गई थी। अल्बर्ट आइंस्टाइन के बाद वह सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और प्रभावी भौतिक-शास्त्री माने गए हैं। ऐसा माना जाता है कि हॉकिंग के सिद्धांत किसी दिन यूनिवर्स (ब्रह्मांड की उत्पत्ति) और ग्रैंड यूनीफाइड थ्योरी, 'द होली ग्रेल ऑफ द माडर्न फिजिक्स' की खोज के बारे में समुचित समाधान देने में सहायक होगी। यह सब शोध उस व्यक्ति ने किया, जो 21 साल की अवस्था में फालिज के कारण अपंग हो गए थे और पिछले 23 साल से पूरी तरह से चलने-फिरने व बोलने में असमर्थ हैं। उन्होंने एक अपाहिज करनेवाली और मनोबल को तोड़ देनेवाली बीमारी के बावजूद अपने असाधारण साहस से उत्कृष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति की है।

कुरूप बतख

पिछले अध्यायों में जो कुछ मैंने लिखा है, उसे पढ़ने के बाद आप सोच रहे होंगे कि मैं इस तरह की पुस्तक लिखने के लिए किस तरह से सक्षम या योग्य हूँ! मेरे कहने का मतलब यह है कि मैं एक सफल व्यक्ति हूँ (कम-से-कम भारतीय मापदंडों के अनुसार)। मेरा एक सुरक्षित और उच्च स्तर का पद है, समाज में मेरा मान-सम्मान है और साथ में एक प्यार करनेवाला परिवार। आप पूछ सकते हैं, ''आपके जैसा व्यक्ति जीवन की विषमताओं के बारे में क्या जाने?'' आपका सवाल बिलकुल सही है। इस सवाल के जवाब में मैं यही कहना चाहूँगा कि अब समय आ गया है कि मैं आपको उस असली कुरूप बतख की कहानी सुनाऊँ, जो इस पुस्तक का लेखक है और जिसका नाम गौरव कृष्ण बंसल है।

मेरी कहानी 28 जुलाई, 1974 को हरियाणा प्रांत के एक शहर हिसार में शुरु होती है। मैं अपने माता-पिता की दूसरी संतान था। मेरे पिता श्री कुँवर कृष्ण बंसल सन् 1967 बैच के भारतीय पुलिस सेवा (IPS) के ऑफिसर हैं और मेरी माँ डॉ. श्रीमती बीना बंसल एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं। इस प्रकार मेरा जन्म एक सामान्य भारतीय परिवार में हुआ था, जिसका समाज में एक तरह काफी ऊँचा स्थान था, और मैं किसी प्रकार से भी अभावों या कठिनाइयों में पला लड़का नहीं था। जहाँ तक धन का सवाल था, हम लोग बहुत आरामदेह या अच्छी हालत में नहीं थे और मेरे पिता पर अपनी सर्विस की माँग की वजह से समय और शक्ति दोनों तरफ से बहुत दबाव था। मुझे इस तरह से फायदा था, जैसे मैं एक अच्छे स्कूल में पढ़ने जाता था और मुझे अच्छा खाना एवं अच्छे वस्त्र मिलते थे। पर इस तरह से नुकसान में था कि जिस स्कूल में पढ़ने जाता था, उसमें काफी अमीर घरों के और यदि ज्यादा नहीं तो बराबर ही के असरदार या रोब-दाबवाले लोगों के बच्चे पढ़ते थे।

मेरे पिताजी का शुरुआती जीवन बहुत संपन्न नहीं था। इस अर्थ में कि जब मेरे पिताजी पढ़ ही रहे थे, तभी उनके पिताजी (मेरे बाबाजी) का स्वर्गवास हो गया। उनके पीछे रह गए मेरी दादीजी और पाँच बच्चे। बाबाजी ने मेरे पिताजी और उनके भाई-बहनों के लिए कोई अधिक या गैरमामूली कही जानेवाली धन-संपत्ति नहीं छोड़ी थी। जब मेरे पिताजी भारतीय पुलिस सेवा में आए, उन दिनों

सरकारी अफसरों का वेतन, (यद्यपि आज भी कम हैं) बहुत ही कम था। यह एक नियम ही था कि वह सरकारी अफसर जिनकी पृष्ठभूमि बहुत मजबूत नहीं थी, वह बस हमेशा तंगहाल या 'हैंड टू माउथ' ही रहते थे—यानी बस दाल-रोटी का सहारा रहता था। हाँ, यदि आप बेईमान थे तो दूसरी बात थी।

मुझे यह कहने में गर्व होता है कि मेरे पिताजी शुरू से आखिर तक, रिटायरमेंट तक, एक ईमानदार अफसर रहे। इससे मेरे जीवन में एक पैराडॉक्स या विरोधाभास हो गया था। कहने को तो मैं एक बड़े अफसर का बेटा था, पर मेरी जेब में कभी उतने पैसे नहीं रहते थे कि मैं अपने दोस्तों पर रोब जमा सकूँ। उन दिनों मैं बस प्रशंसा और चाहत की दृष्टि से अपने स्कूल के साथियों के फैंसी बैग्स या चुंबकीय पेंसिल बॉक्स या कोई नया बढ़िया बिजली या बैटरी से चलनेवाला खिलौना देखा करता था। कई बच्चों के पास अपनी साइकिलें भी थीं, जो उन दिनों बहुत बड़ी बात थी।

मेरी शुरुआती शिक्षा लखनऊ के पॉश इलाके हजरतगंज में स्थित कैथेड्रल स्कूल में हुई थी। वह शहर का एक प्रतिष्ठित मिशनरी स्कूल था। उसमें शहर के जाने-माने गणमान्य व्यक्तियों के बच्चे पढ़ते थे। मेरे ज्यादातर सहपाठी पढ़ने-लिखने में बहुत अच्छे तथा काफी गुण-संपन्न बच्चे थे। उनके पास वे सब चीजें थीं, जिनकी मैं कल्पना किया करता था। उनमें से कुछ तो लगभग 'सेलीब्रेटी' की तरह थे, क्योंकि वे पढ़ाई-लिखाई से लेकर खेल-कूद, डिबेट आदि सब में बहुत आगे थे। उन सहपाठियों की तुलना में मैं कुछ भी नहीं था। ऊपर से मेरे पास स्टेटस सिंबलवाली कोई चीज नहीं थी, यहाँ तक कि एक अच्छी सी साइकिल भी नहीं थी। इससे मेरी स्थिति और भी नाजुक थी। मैं यह सोचा करता था कि मैं ठिगना, अच्छा न दिखनेवाला और कुछ मायनों में वंचित छात्र था। मुझे पतंग उड़ाना बहुत पसंद था और अपने खाली समय में मैं पूरे मन से पतंग उड़ाया करता था, जो मेरी उम्र के बच्चों में कम पाया जाता था। इसका मतलब यह भी हुआ कि मेरे पढ़ाई करने के लिए और होमवर्क करने के लिए बहुत कम समय बचता था।

इसका मतलब यह भी नहीं कि मैं बहुत नटखट या शैतान बच्चा था। मैं बिलकुल विपरीत था। मैं बहुत शरमीला और खिंचा-खिंचा-सा रहता था। क्लास में भी बिलकुल शांत (कभी-कभी तो मैं छत की ओर ताका करता था)। इस सब वजह से मेरी एक टीचर मिसेज इमैन्युएल ने मुझे 'क्लास का दार्शनिक' नाम दे डाला था। मुझसे होमवर्क पूरा कराने के लिए मेरे टीचर्स के सारे प्रयास निरर्थक रहे। मुझसे ज्यादा योग्य सहपाठी या तो मेरी ओर ध्यान नहीं देते थे या मेरा मखौल उड़ाते थे।

मुझे एक घटना याद आ रही है, जो मेरे आत्मविश्वास के लिए विशेषतया अच्छी नहीं थी। मेरी कक्षा आठ के एक सहपाठी सौरभ शर्मा ने अन्य मित्रों के साथ एक 'बाइसिकल क्लब' बनाया। सौरभ बहुत तेज विद्यार्थी था और असीम अग्रवाल व रूप कुमार के साथ कक्षा में प्रथम आने की कोशिश में रहता था। असीम एक अद्वितीय विद्यार्थी था और अकसर गणित व विज्ञान में उसके 100 में से 100 नंबर आते थे। वह खेल-कूद एवं अन्य गतिविधियों में भी भाग लेता था और अपने टीचर्स का चहेता लड़का था। वह अपनी अप्रोच (रुख) में 'हाइपर-कंपटीटिव' था। दूसरी ओर रूप कुमार भी पढ़ाई में उतना ही तेज था, जितना असीम था। दोनों में बस एक-आध मार्क्स (नंबर) का फर्क था। पर सबकुछ मिलाकर हरफनमौला रूप सबसे अच्छा विद्यार्थी था, क्लास का भी और स्कूल का भी। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था। अंग्रेजी भाषा पर अच्छी पकड़ थी और वह गायक तथा कमाल का अभिनेता भी था। सौरभ भी एक बहुत प्रखर लड़का था और पाठ्यक्रम से अतिरिक्त गतिविधियों में ठीक-ठाक था। कोई भी छात्र उन तीनों के सामने फीका पड़ जाता था। मैं भी कोई अपवाद नहीं था। जब 'बाइसिकल क्लब' का विचार आया तो मैं भी उसका सदस्य बनना चाहता था।

पर चूँकि मेरे पास अपनी साइकिल नहीं थी, मुझे उन लोगों ने साइकिल क्लब का सदस्य बनाने से साफ-साफ इनकार कर दिया। मुझे अब भी याद है कि मैं कितना निराश और वंचित महसूस कर रहा था। यह जाहिर था कि इस इनकार को मैंने अपनी पढ़ाई-लिखाई में कम उत्कृष्टता और अच्छा न दिखने से जोड़ा। यह भावना इसलिए भी और घर कर गई कि असीम, सौरभ और रूप तीनों उस क्लब के सदस्य थे।

यह दुर्भाग्यपूर्ण था, पर हमारी कक्षा में प्रतियोगिता की बहुत ज्यादा भावना थी, विशेषतया टॉप या फर्स्ट पोजीशन (पहला स्थान) पाने की। सौरभ और असीम इस प्रतियोगिता के मुखिया थे। उनमें बराबर की होड़ लगी रहती थी। रूप भी इस होड़ में था, पर इस हद तक नहीं कि वह एक अवांछित मित्र बन जाए था। तथापि, यह कक्षा के दस अग्रणी बच्चों की एक कॉमन फीचर या बात थी, मुझे छोड़कर। यद्यपि पढ़ाई-लिखाई में मेरी दिलचस्पी उतनी ज्यादा नहीं थी, फिर भी मैं किसी भाँति कक्षा में पहले दस में स्थान पा ही जाता था। इस प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता था कि मैं एक अच्छा स्टूडेंट नहीं था।

उन दिनों मेरे पिताजी की हार्दिक इच्छा थी कि मैं क्लास में प्रथम आऊँ। यदि मैं, अपने अन्य सहपाठियों की तरह, अपनी पढ़ाई पर और ज्यादा ध्यान तथा समय देता तो यह लक्ष्य भी पा सकता था। पर समस्या यह थी कि यह मेरा कभी भी लक्ष्य रहा ही नहीं था। यह मेरे अंदर प्रतिस्पर्धा की भावना की कमी और मेरे पतंग उड़ाने की चाहत की वजह से था। इसी वजह से शायद मैं अपनी

क्लास में अलग-थलग पड़ गया था और अपने सहपाठियों के साथ घुल-मिल नहीं पाया था। उस पर सोने में सुहागा यह था कि मैं लड़कियों जैसे काम—पौधे उगाना एवं कुत्ते-बिल्ली से प्यार करने में ज्यादा मशगूल रहता था, बजाय इसके कि आदमियों जैसे काम—क्रिकेट, फुटबॉल आदि अन्य खेल खेलना। इन सबका परिणाम यह था कि कक्षा में मेरा कोई मित्र नहीं था, जब तक मैं सातवीं क्लास में नहीं पहुँच गया। ऐसी स्थिति में मैं कविता लिखता था तथा अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उन्हें संगीतबद्ध किया करता था। यह भी एक रहस्य था। मेरी कविताएँ एक ही नोटबुक में लिखी जाती थीं और मैं उन्हें घर में अपनी अलमारी में छिपाकर रखता था।

इस प्रकार से अंतिम विश्लेषण में मैं अपनी ही दुनिया में खोया रहता था और मुझे जो प्रतिस्पर्धा कक्षा में चल रही थी, उसका तनिक भी भान नहीं था। जीवन इसी भाँति से चल रहा था, जब तक कि मेरे बारे में यह निश्चय नहीं किया गया कि मुझे 'कैथेड्रल स्कूल' से 'महानगर ब्वॉयज स्कूल' में स्थानांतरित कर दिया जाए। यहाँ मैं उन कारणों को नहीं लिख सकता, जिस कारण ऐसा किया गया, क्योंकि वह 'कैथेड्रल स्कूल' में मेरे कुछ शिक्षकों और सहपाठियों के खिलाफ जा सकता है।

'महानगर ब्वॉयज स्कूल' तब भी और अब भी लखनऊ का बहुत बढ़िया स्कूल है। चूँकि कक्षा 8 में मेरे अच्छे नंबर आ गए थे, अतएव मेरा दाखिला वहाँ आसानी से हो गया। पर भाग्य 'कुरूप बतख' पर अभी मुसकराने को तैयार नहीं था। 'महानगर ब्वॉयज स्कूल' में मेरा नौवीं क्लास में एडमिशन हो गया था; पर चूँकि मैं थोड़ा शरमीला और खिंचा-खिंचा रहनेवाला लड़का था तो इसका प्रभाव विनाशकारी था। पिछले वर्ष साइकिल-क्लब में शामिल न होने के कारण मेरे आत्मविश्वास को काफी धक्का लगा। ऐसी परिस्थिति में और अपने केवल दो दोस्तों रूप कुमार और नमिता से अलग हो जाने के बाद यह स्वाभाविक था कि मैं बुरी संगत में पड़ जाऊँ। और यही हुआ भी। मुझे बिलकुल ठीक-ठीक तो नहीं याद कि उस साल क्या हुआ था, पर यह जरूर याद है कि उस साल मैंने पढ़ाई नहीं के बराबर की थी। जब वार्षिक परीक्षा के परिणाम आए तो मेरा नाम उस छोटी सी लिस्ट में था, जो 'फेल' बच्चों की थी। गणित में मेरे केवल 5 नंबर थे और साइंस में 100 में 10। वही लड़का, जो पिछले साल क्लास में पहले दस बच्चों में रहता था, इस बार बिलकुल ही फेल हो गया—वह भी क्लास में एकमात्र। इसके साथ ही स्कूल ने यह भी फैसला किया कि मुझे स्कूल से ही बाहर निकाल दिया जाए।

जब मेरे पिताजी को इसके बारे में पता चला तो वह बहुत निराश हुए और मुझे उनके शब्द अभी भी याद हैं, ''बेटा, आज तुम्हारी वजह से मैं बहुत शर्मिंदा हूँ।''

मेरे पिताजी स्कूल के प्रिंसिपल ब्रदर मनी से मिले। उन्होंने कृपा करके मुझे फिर से दाखिला देने की सहमति दे दी। बशर्ते कि मैं उसी क्लास में दोबारा से पढ़ूँ। इस असफलता के बाद तो मैं अस्पृश्य जैसा बन गया। वे विद्यार्थी और अभिभावक, जो यह कहानी पढ़ रहे होंगे, उन्हें यह पता चल जाएगा कि उस लड़के/लड़की का अपने मित्रों और अभिभावकों के बीच क्या हाल होता होगा, जो क्लास में फेल हो जाता है। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं कि मेरे सब दोस्तों, रूप कुमार और नमिता के अलावा, सबने मेरा साथ छोड़ दिया था। मैं कभी भी वह वाक्य, जो उन लोगों ने अलग-अलग समय पर कहा था, कभी नहीं भूलूँगा, ''गौरव, तुम ऐसे तो नहीं थे, बस यह गड़बड़ तुम्हारे साथ हो गई।''

इस एक वाक्य ने मुझे बहुत शक्ति दी और मैंने बैठकर अपनी स्थिति का आकलन करना शुरू किया। काफी सोच-विचार करके मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि मैं कक्षा 9 दुबारा नहीं करूँगा और दूसरी चीज यह कि यह मैं भरसक कोशिश करूँगा कि मुझे कक्षा 9 दुबारा न करना पड़े। जैसाकि उस समय नियम था कि यदि कोई फेल हुआ विद्यार्थी स्कूल छोड़ना चाहता है तो उसे 'प्रमोटेड' का प्रमाण-पत्र दे दिया जाता था। मैंने 'महानगर ब्वॉयज स्कूल' छोड़ने का फैसला किया और उन्होंने मुझे 'प्रमोटेड टू क्लास टेन' (दसवीं क्लास में प्रोन्नत किया) का सर्टिफिकेट दे दिया। उसके बाद से फिर मेरे अपमान का सिलसिला शुरू हुआ। मैंने कैथेड्रल स्कूल में पुनः प्रवेश के लिए कोशिश की, पर उन्होंने बिलकुल मना कर दिया। फिर मैंने कॉलविन ताल्लुकदार कॉलेज में प्रयास किया, जहाँ पर मेरे भाई पढ़ते थे और अच्छे विद्यार्थी माने जाते थे। कॉलविन में भी मुझे दाखिला नहीं मिला।

उसी समय मैंने यह निश्चय किया कि मैं अपना 10+2 कॉल्विन से ही करूँगा। पर कक्षा दस में एडमिशन लेने की समस्या तो अभी ज्यों-की-त्यों थी। तभी आशा की एक किरण नजर आई। एक सरकारी स्कूल अग्रसेन इंटर कॉलेज 'प्रमोटेड' के आधार पर मुझे दसवीं क्लास में प्रवेश देने के लिए राजी हो गया। जिन स्कूलों में मैं अभी तक पढ़कर आया था, उनकी तुलना में यह स्कूल कुछ भी नहीं था। इसके अलावा वहाँ पढ़ाने का माध्यम हिंदी था, जबकि अभी तक मैं अंग्रेजी माध्यम स्कूलों से पढ़कर आया था। यह एक बड़ा धक्का था, पर मुझे खिसियाकर सब सहना पड़ा।

मुझे अभी भी अग्रसेन इंटर कॉलेज में अपना पहला दिन याद है। मैं अपनी नई यूनीफॉर्म में समय पर स्कूल पहुँच गया था। उस स्कूल में बच्चे थोड़ा मध्यम या निम्न-मध्य वर्गीय परिवारों से आते थे। यह उनकी वेशभूषा से भी पता चल रहा था। यह कोई आश्चर्य नहीं था कि मैं अपने नई ड्रेस में बिलकुल अलग-सा चमक रहा था। मैं उछलते कदमों से अपने नए क्लास-रूम में पहुँचा। जिन

क्लास-रूमों में मैं अभी तक पढ़ने गया था, उनकी तुलना में यह कुछ भी नहीं था। डेस्क और बेंचें सब टूटी-फूटी और जीर्ण-शीर्ण थीं। खिड़कियाँ बस दीवार में भोखे की तरह थीं। उसमें पट या शटर आदि नहीं थे और न ही उनमें कोई शीशा लगा था। पर फिर भी वह एक क्लास-रूम था। मैं अपनी कक्षा में पहुँचा। मैंने एक अजीब से लंबे लड़के को देखा, जिसका सर घुटा हुआ था और उसने जो वस्त्र पहने थे, वे कुछ-कुछ यूनिफॉर्म की तरह दिख रहे थे।

जब मैं 'महानगर ब्वॉयज स्कूल' में था तो बड़ी गंदी भाषा सीख गया था और हर वाक्य में गाली या अश्लील शब्द का प्रयोग करने लगा था। मैं यह भाषा एक प्रकार से 'स्टेटस सिंबल' की तरह इस्तेमाल करने लगा था। यह कोई अचरज की बात नहीं थी कि मैंने उस लड़के को अभिवादन करते हुए फिर उसी प्रकार की गंदी भाषा का प्रयोग किया। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब वह लड़का बिना विचलित हुए मुझे घूरते हुए आँखों में आँखें डालकर बोला, ''अच्छे घर के लगते हो। तुम्हारे मुँह से ये शब्द शोभा नहीं देते।'' मैं उसी जगह पर ठूँठ की तरह खड़ा रहा और शब्दों को ढूँढ़ने लगा। मुझे ऐसा लगा जैसे स्वयं ईश्वर मुझे डाँट रहा है, उस लड़के के माध्यम से। मैं एकदम से यह समझ गया कि मैं किसी दलदल में फँस गया हूँ। एक अच्छे और प्रतिष्ठित परिवार से होने के बावजूद मैं सबसे गंदी, गिरी हुई और गुंडे-बदमाशोंवाली भाषा का प्रयोग कर रहा था। मैंने एकदम से उससे क्षमा-याचना की।

उस लड़के ने अपना नाम प्रसन्न कुमार निगम बताया। बाद में हम अच्छे दोस्त बन गए। उसी दिन से मैंने उस तरह की भाषा का प्रयोग बंद कर दिया। मैं आपको बता नहीं सकता कि केवल सही भाषा बोलने से मेरे अंदर कितना बदलाव आया। इस तरह की भाषा छोड़ देने के बाद मेरे सोचने की प्रक्रिया भी सही हो गई और मैं ठीक रास्ते पर चल निकला। उसके बाद मेरी दोस्ती क्लास के और लड़कों से भी हो गई और मैं अपनी गणित एवं विज्ञान की पढ़ाई पर ध्यान देने लग गया, वे दो विषय जिनमें मैं कक्षा 9 में फेल हो गया था।

'अग्रसेन कॉलेज' में ही मैंने पाठ्येतर गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया। इस सरकारी स्कूल के बारे में लोगों को कम ही जानकारी थी, अतः यहाँ से अच्छी बड़ी-बड़ी प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए बुलाया नहीं जाता था, जो बड़ी अच्छी नामी-गिरामी संस्थाओं द्वारा समय-समय पर आयोजित की जाती थीं।

सन् 1990 में जब मैं 'अग्रसेन कॉलेज' में कक्षा 10 का विद्यार्थी था, हमारे स्कूल में स्थानीय जैन समुदाय द्वारा आयोजित एक वाद-विवाद प्रतियोगिता के लिए आमंत्रित किया गया। प्रथम पुरस्कार केवल 100 रुपए का था, जो उस समय

के हिसाब से एक अच्छी-खासी राशि थी। मैंने इसकी सूचना पढ़ी और उसमें हिस्सा लेने का निश्चय किया। समस्या केवल यही थी कि मुझे जनसभा में भाषण देने का कोई अनुभव नहीं था। इसके पहले केवल एक बार ही मुझे अपने स्कूल (कैथेड्रल में) में आयोजित एक इंटर-हाउस डिबेट में भाग लेने का मौका मिला था, जब मैं कक्षा 8 में था। मुझे अब भी उसकी याद है। इत्तफाक ऐसा था कि मेरा ही नाम स्टेज पर पहले आने के लिए पुकारा गया, जिसके लिए मैं पहले से मानसिक रूप से तैयार नहीं था। मेरे घुटने बुरी तरह काँपने लगे और काबू में ही नहीं आ रहे थे तथा मुँह सूखने लगा था। मैंने बहुत कोशिश की, पर मेरे मुँह से कोई शब्द ही नहीं निकला और मैं वहाँ ऐसा हाँफने लगा, जैसे जल के बाहर मछली। इसके बाद लगा कि जैसे एक युग बीत गया (यद्यपि केवल कुछ ही मिनट हुए थे)। मैं घुटी हुई आवाज में केवल 'थैंक्यू' (धन्यवाद) बोल पाया और मंच पर से नीचे उतर आया। मेरे मंच से नीचे उतरते ही लोगों ने तालियाँ बजाईं। ऐसा लगा, जैसे वे मुझे चिढ़ा रहे हों (खुशी जाहिर करने का तो कोई सवाल उठता ही नहीं था)। इस अनुभव के बाद मेरे मन में ''स्टेज फ्राइट'' घर कर गया। यानी मुझे मंच पर जाने से डर लगने लगा।

मुझे इतनी ग्लानि हुई कि मैं किसी तरह से वहाँ से बाथरूम चला गया और वहाँ से फिर मौका पाते ही खिसक लिया तथा अपने क्लास-रूम में चला गया।

जनता के सामने इस तरह से भाषण देने की पृष्ठभूमि में मेरा वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने का फैसला काफी साहसिक एवं महत्त्वाकांक्षी था। फिर भी मेरे कॉलेज में जो शिक्षक सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देखते थे, उनके पास जाकर मैंने डिबेट में भाग लेने की अनुमति माँगी। इससे संबंधित टीचर श्री डी.पी. मिश्रा कॉलेज के सबसे वरिष्ठ शिक्षक थे और हिंदी पढ़ाते थे। उनका रंग गोरा था। थोड़े से गंजे थे और बड़ी पैनी निगाहों से देखते थे, जिससे डर लगता था। तथापि, वह बच्चों को बहुत चाहते थे और उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि स्कूल का नाम कमाना है तो छात्रों को पाठ्येतर कार्यक्रमों में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना चाहिए।

पर इस दिशा में उनके पहले प्रयास उतने सफल नहीं रहे थे। इसकी वजह यह थी कि जिन गतिविधियों के लिए स्कूल को भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया था, उसमें कुछ ही विद्यार्थियों ने भाग लिया या नहीं भी लिया। जब मैंने उन्हें जाकर बताया कि मैं इस डिबेट में हिस्सा लेना चाहता हूँ, तब उन्होंने मुझसे एक ही सवाल पूछा कि 'क्या मैं इस विषय में गंभीर हूँ? ऐसा तो नहीं कि मैं बाद में पीछे हट जाऊँ?' मैंने उन्हें बताया कि मैं इस विषय में गंभीर हूँ और मेरा भाषण देने का यह पहला मौका होगा और इसका मुझे कोई पहले का अनुभव नहीं था। इसके जवाब में उन्होंने कहा था कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि

मेरा कोई पूर्व अनुभव था या नहीं। यदि मैं गंभीर और वचनबद्ध हूँ तो वह काफी था। उन्होंने कहा कि मैं उस मोशन (विषय) के पक्ष में या विपक्ष बोलने के लिए मसौदा तैयार करूँ और दिखाऊँ।

वाद-विवाद का विषय था—'भारत की अखंडता बस अहिंसा से ही संभव है।' और वह हिंदी में था। चूँकि डिबेट जैन समाज द्वारा आयोजित की जा रही थी, जो अहिंसा के पक्षधर थे, अतएव इसके पक्ष में ही बोलना उचित होगा। और यह कि गांधीजी की अहिंसा की नीतियों द्वारा ही संभव था कि राष्ट्र की अखंडता को लंबे समय तक अक्षुण बनाए रखा जा सके। पर मेरे अपने विचार इसके विपरीत थे। अतएव, मैंने 'मोशन' के विरुद्ध बोलने का निश्चय किया। अगले दिन मैंने जो ड्राफ्ट (मसौदा) तैयार किया था, उसे लेकर गुरुजी के पास गया। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा, जब मेरा मसौदा कुछ संशोधन के साथ अनुमोदित कर दिया गया।

मैंने उनके सुझाव के अनुसार मसौदे में संशोधन कर दिए। उसके बाद उन्होंने बोलने के लिए मेरी अच्छी प्रैक्टिस करवाई। पहले अपने सामने, फिर पूरी कक्षा में विद्यार्थियों के सामने और बाद में सारे स्कूल के सामने। जल्द ही मेरे घुटनों का हिलना, मुँह का सूखना, नर्वसनेस बंद हो गई। मैंने पाया कि मैं विश्वास के साथ और साफ-साफ बोलने लगा था। मैंने अपना अभ्यास दुगुना कर दिया और जल्द ही फैसले का दिन आ गया।

मिली-जुली भावनाओं के साथ मैं उस दिन मंच पर चढ़ा—थोड़ा सा भय, थोड़ा सा विश्वास! 'क्या होगा, यदि अचानक मैं वह सब भूल गया, जिसे मैंने इतनी मेहनत के साथ तैयार किया था? क्या होगा, यदि ऐन मौके पर माइक्रोफोन ही खराब हो गया, या यदि लोग मुझे हूट करके स्टेज पर से नीचे उतरने को मजबूर कर दें? पर मैंने बहुत अच्छी तरह तैयारी की थी और दो साल पहले 'कैथेड्रल स्कूल' वाली घटना अब इतिहास बन गई थी। मैं इस बार जरूर विजयी हूँगा।' इस तरह के विचार मेरे मन में उमड़-घुमड़कर आ रहे थे, जब मैं स्टेज की तरफ बढ़ रहा था। एक तरह की सुन्न कर देनेवाली नर्वसनेस मेरे सारे शरीर में दौड़ गई। मेरे मुँह का थूक सूख गया था, जैसे तेज धूप में पानी के छोटे-छोटे गड्ढे सूख जाते हैं और मेरी जबान का स्वाद बिगड़ गया। पेट में भी अजीब-सा तनाव हो गया और मेरी उँगलियों के पोर में चिनचिनाहट-सी होने लगी। मुझे लगा कि सारे लोग वहाँ इसलिए बैठे हैं कि मुझे फेल कर दें या नाकाम साबित कर दें। मेरे मन में एक बार आया कि मैं वहाँ से उलटे पाँव भाग लूँ। इस तरह के विचारों के साथ मैंने माइक्रोफोन हाथ में पकड़ा। फिर मैंने बोलने से पहले चारों तरफ घूमकर देखा और पाया कि उन चेहरों में आशा ज्यादा और शत्रुता की भावना कम या नहीं थी—जजों और दर्शकों/श्रोताओं दोनों में ही। उनके

चेहरे से मुझे यह लगा कि ये लोग मुझे अपमानित करने के लिए नहीं, मुझसे कुछ कर दिखाने की उम्मीद में बैठे थे। मैंने एक लंबी साँस ली। इससे मैं कुछ स्थिर और शांत हुआ। नर्वस होने के लक्षण धीरे-धीरे गायब होने लगे। फिर मैंने अपनी आँखों के सामने वह दृश्य लाया, जब मैंने तमाम स्कूल के सामने भरी सभा में अपना भाषण दिया था। यहाँ पर स्कूल से कम ही श्रोता थे। मेरे अंदर एक आत्मविश्वास जागा और मैंने अपना भाषण शुरु कर दिया। मेरे मुँह से स्वतः शब्द निकलने लगे और उसमें भाव भी थे। इसके पहले कि मैं जान पाता, मेरे लिए निश्चित 5 मिनट खत्म हो गए और हॉल में तालियों की गड़गड़ाहट होने लगी। हलके से, चोरी से जब मैंने जजों की ओर देखा तो उनके चेहरे पर मुसकराहट और अनुमोदन का भाव था।

वाद-विवाद प्रतियोगिता चलती रही और अंत में परिणाम का समय आ गया। सभापति महोदय ने इनामों की घोषणा शुरु की। सबसे पहले तृतीय पुरस्कार घोषित किया गया, उसमें मेरा नाम नहीं था। फिर द्वितीय पुरस्कार घोषित हुआ, उसमें भी मेरा नाम नहीं था। अब प्रथम पुरस्कार घोषित करने की बारी थी। थोड़ी देर का अंतराल और फिर आवाज आई, ''गौरव कृष्ण बंसल।'' मैं अपने कानों पर विश्वास नहीं कर पाया। मैं प्रथम पुरस्कार जीत गया था। गुरुजी के चेहरे पर एक नजर ही काफी थी। खुशी से उनका चेहरा चमक रहा था। वह मेरे पास आए और स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरा। मैंने उनका चरण-स्पर्श किया।

वापस आने पर स्कूल में खूब जश्न मनाया गया। बहुत दिनों बाद स्कूल के किसी छात्र को किसी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला था। तब से हमारे स्कूल को जगह-जगह से, संस्थानों से पाठ्येतर गतिविधियों, वाद-विवाद आदि में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाने लगा। हमने अपने गुरुजी के मार्गदर्शन में एक टीम बनाई, जो बहुत अभेद्य थी। इसके बाद हम वाद-विवाद के अलावा संगीत-नाटक के कार्यक्रमों में भी हम बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगे। उस वर्ष हमारे स्कूल ने इतनी ट्रॉफियाँ जीतीं, जितनी पिछले सालों में कभी नहीं मिली थीं। हमारे स्कूल को लखनऊ के स्कूलों में अच्छी पहचान व ख्याति मिली तथा उसकी पकड़ इस तरह की गतिविधियों में मजबूत हो गई। व्यक्तिगत रुप से मेरे लिए यह मेरे अंदर उस वर्ष एक महान् रूपांतर हुआ।

मैं अपने संस्थान का सितारा बन गया। मित्रों और वरिष्ठ लोगों से मुझे प्रेम, प्रशंसा और सम्मान समान मात्रा में मिला, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। हिंदी पर मेरी पकड़ मजबूत हो गई और मैं आत्मविश्वास से परिपूर्ण एक सफल वक्ता बन गया। मेरे अंदर सफल होने की भूख जाग गई। मैं अपनी पढ़ाई पर ज्यादा ध्यान देने लगा। विशेषतया उन विषयों पर, जिसमें मैं कक्षा 9 में फेल हो गया था। किसी और चीज से ज्यादा मुझे इस बात की ज्यादा समझ आई कि मेरी

असफलता का कारण मेरे अंदर की खामियाँ-त्रुटियाँ ही थीं। इसके अलावा और कोई वजह नहीं थी। दसवीं की बोर्ड परीक्षा में मेरे कुल मिलाकर 73 प्रतिशत अंक आए और एक विषय को छोड़कर सबमें मुझे विशिष्ट (75 प्रतिशत) अंक मिले थे। विज्ञान और गणित में मेरी विजय हुई थी। केवल एक साल पहले इन विषयों में मेरे अंक क्रमशः 5 प्रतिशत और 10 प्रतिशत थे। उसके केवल एक साल बाद एक खुली परीक्षा में मेरे इन विषयों में 79 प्रतिशत और 80 प्रतिशत अंक आए थे।

मैं अपनी अंक-तालिका लेकर 'कॉल्विन तालुक्केदार कॉलेज' में एडमिशन (प्रवेश) के लिए पहुँचा। बिना किसी दुविधा या हिचकिचाहट के न केवल उन्होंने मुझे कॉलेज में एडमिशन दे दिया बल्कि विषय चुनने की स्वतंत्रता भी प्रदान की। मैंने अपना दूसरा लक्ष्य भी प्राप्त कर लिया था। मैंने अपने आपसे वादा किया था कि मैं उसी कॉलेज में दाखिला लूँगा, जिसने मुझे एक साल पहले प्रवेश देने से इनकार कर दिया था। यह वादा मैंने पूरा भी किया। कुरूप बतख या 'अग्ली डकलिंग' के अब नए-नए पंख निकल रहे थे।

एडमिशन लेना एक बात है और उसे सफल बनाना एक बिलकुल अलग चीज है। मैं अग्रसेन कॉलेज का एक स्टार स्टूडेंट था, पर यहाँ पर चीजें बिलकुल भिन्न थीं। एक बार फिर मेरा साथ ऐसे लड़कों से था, जो मेरी तरह सर्वगुण-संपन्न थे या कुछ ज्यादा ही गुणवान् थे। पर इस बार वे मुझसे दोस्ती करने को इच्छुक थे। जल्दी ही मेरी मित्रों की एक टोली बन गई और समय पंख लगाकर उड़ने लगा। इसके पहले कि मुझे पता चलता, बारहवीं कक्षा की परीक्षा सामने आ गई। पर कहीं कुछ गड़बड़ था। मैंने परीक्षा के लिए कोई तैयारी ही नहीं की थी। हताश होकर मैंने अपनी पढ़ाई शुरू की और कोर्स को पूरा करने की कोशिश की। पर वह एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने के समान था। मैं पास तो हो गया, पर मेरा औसत केवल 62 प्रतिशत रहा, जोकि मेरी दसवीं के परिणाम से 11 प्रतिशत कम था। पर फिर भी मैं खुश था कि पास हो गया, वह भी फर्स्ट डिवीजन या प्रथम श्रेणी में (भारतीय शिक्षा प्रणाली के अनुसार 60 प्रतिशत से अधिक अंकवाले को प्रथम श्रेणी में रखा जाता है)। तथापि, एक बार फिर मेरा सुखद समय खत्म हो गया था। इसके अलावा मैंने किसी अन्य गतिविधि में हिस्सा भी नहीं लिया था।

फिर से मेरा कठिन समय शुरू हो गया था। मैं जैव-विज्ञान का छात्र था और मेरा ध्येय एक मेडिकल डॉक्टर बनने का था। बेशक यह लक्ष्य मेरा उतना नहीं था जितना कि मेरे माता-पिता का था। पर मुझे भी इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। अब अगला कदम यह था कि मैं प्री-मेडिकल टेस्ट परीक्षा के लिए प्रतियोगिता में भाग लूँ और उसमें पास हो जाऊँ। यह एक अखिल भारतीय परीक्षा होती है

और इसमें जो लोग निकल जाते हैं (चुन लिये जाते हैं), उन्हें उनकी मैरिट लिस्ट में क्या पोजीशन है, इसके अनुसार मेडिकल कॉलेज मिलता है। जैसाकि उन दिनों रिवाज था, मैंने ड्रॉप कर दिया या अपनी पढ़ाई (कॉलेज की) एक साल के लिए छोड़ दी थी और एक कोचिंग संस्थान जॉइन करने का इरादा बनाया। ड्रॉप करने का मतलब है कि मैंने किसी भी यूनिवर्सिटी/कॉलेज में कोई अंडर-ग्रेजुएट कोर्स, बी.ए., बी.एस-सी., बी.कॉम. में दाखिला नहीं लिया। मेरे माता-पिता इसके बिलकुल खिलाफ थे। यहाँ तक कि मेरे शिक्षक और शुभचिंतक भी मेरे इस फैसले के खिलाफ थे। पर मैंने उनकी बात नहीं मानी और जोखिम उठाने का फैसला किया।

मेरा यह निश्चय निराधार नहीं था। मेरा इरादा था कि मैं पूरा ध्यान अपनी पी.एम.टी. की परीक्षा की पढ़ाई पर लगाऊँगा, जिससे कि पहली बार में ही निकल जाऊँ। पर सिद्धांत में और उसका व्यावहारिक जीवन में अमल लाने में बड़ा फर्क होता है। मैंने लखनऊ का एक जाना-माना कोचिंग इंस्टीट्यूट जॉइन कर लिया। पर मैं वहाँ फिर से एक बार बुरी संगत में पड़ गया। मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि मेरे उस समय के अधिकांश दोस्तों का कोई ध्येय नहीं था, कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। वे तो सब संपन्न घरों से आए थे और अपना समय यूँ ही व्यर्थ गँवा रहे थे। उन्हें तो बस मौज-मस्ती करनी थी। वे लड़कियों का साथ ढूँढ़ते रहते थे। उनका पी.एम.टी. की परीक्षा में सफल होने का कोई इरादा नहीं था।

'काल्विन कॉलेज' के कुछ होशियार लड़के, जिन्हें मैं जानता था, तो अपनी पढ़ाई-लिखाई में जुट गए, पर मैं ऐसा नहीं कर सका, और परिणामस्वरूप मैं पी.एम.टी. में फेल हो गया। इसके अलावा और जो भी परीक्षाएँ मैंने दीं, उनमें भी मैं छूट गया। मैं फिर उसी जगह पर आ गया था, जहाँ से शुरू किया था। कक्षा 9 में जो साल मैंने इतनी मुश्किल से बचाया, उसे भी मैंने खो दिया था।

इस असफलता के बाद मैंने बैठकर अपनी शक्तियों और कमजोरियों का विश्लेषण किया। मैंने जीवन में पहली बार बैठकर गंभीरता से यह विचार किया कि क्या मैं वास्तव में डॉक्टर बनना चाहता था? मैंने पाया कि यह लक्ष्य मेरे लिए अन्य लोगों द्वारा निर्धारित किया गया था? मैंने पाया कि वास्तव में डॉक्टर बनना मेरे जीवन का ध्येय नहीं था। पर मैं जीवन में क्या बनना चाहता था—यह भी उस वक्त मेरे दिमाग में स्पष्ट नहीं था। पर यह बात जरूर निश्चित थी कि मैं डॉक्टर तो नहीं बनना चाहता था। तब भी यह एक बड़ी कूद थी। कम-से-कम यह फैसला कि मुझे डॉक्टर नहीं बनना है (चाहे निगेटिव भाव में ही सही), अपने आप में अहम फैसला था—कम-से-कम मैं एक और साल उसकी तैयारी में नहीं गँवाऊँगा। अतः इस बार मैं लखनऊ यूनिवर्सिटी में दाखिला लेने के लिए

प्रतियोगिता (परीक्षा) में बैठा। मैं उसमें सफल हो गया और मुझे अपने मनपसंद विषय—वनस्पति-विज्ञान, रसायन-शास्त्र और प्राणी-विज्ञान मिल गए।

लखनऊ यूनिवर्सिटी, जैसा वह जानी जाती है, एक सिर चकरा देनीवाली जगह है। मैं यह नहीं कहूँगा कि यह दुनिया की सर्वोत्तम यूनिवर्सिटी है या फिर दुनिया की श्रेष्ठ यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालयों) में से एक है। वास्तव में दुनिया की अच्छी यूनिवर्सिटियों मैं शायद इसकी कोई गिनती नहीं है। तथापि, यह एक बहुत पुरानी यूनिवर्सिटी है और तमाम अन्य दिग्गज छात्रों के साथ-साथ भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा जैसे छात्र भी वहाँ के पूर्व छात्र रह चुके हैं। जैसाकि अकसर होता है, कोई भी जगह जिसका इतिहास पुराना होता है, वह एक मिली-जुली-सी जगह होती है। यह इसी प्रकार होता है जैसे कि कोई पुराना खेत हो, जहाँ पर अच्छी व स्वस्थ फसल के साथ खरपतवार भी होते हैं। यह तो विद्यार्थी के ऊपर निर्भर करता था कि वह पढ़ना चाहता है और पढ़ाई में उत्कृष्ट बनना चाहता था या नहीं।

मैं यहाँ यह स्पष्ट कह देना चाहूँगा कि वहाँ पर असंख्य ऐसे मौके थे, जिनका पढ़ाई-लिखाई या अध्ययन से कोई संबंध नहीं था। मैंने जब डॉक्टरी की पढ़ाई करने का इरादा छोड़ दिया तो फिर अपनी विश्वविद्यालय की पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित कर दिया। मैंने यह निश्चय किया कि मैं चुनी हुई चीजों को पढ़कर और गेस पेपर पढ़कर इम्तिहान पास करने के बजाय पूरा कोर्स पढ़ूँगा और अपने विषयों पर मास्टरी हासिल करके रहूँगा। यह कहना तो आसान है, पर करना कठिन है। यह भी किसी पहाड़ पर चढ़ने से कम न था। फाइनल परीक्षा पास करना बहुत आसान था। बस आप थोड़ी गिनी-चुनी चीजें पढ़िए और गेस पेपर के सहारे आपकी नैया पार हो जाएगी। पर मैं तो अपने विषयों पर विशेषज्ञता हासिल करना चाहता था।

कोर्स बहुत विशाल था और उसमें बहुत गहन अध्ययन की जरूरत थी। अतएव, मैंने यह निर्णय किया कि मैं प्रत्येक दिन कुछ घंटे पढ़ने के लिए बिलकुल निश्चित कर लूँगा और प्रतिदिन उस समय मैं अपनी बिना नागा पढ़ाई करूँगा। इस संकल्प पर मैं अडिग बना रहा। जल्द ही मैंने अच्छी प्रगति कर ली और मेरे शिक्षक मुझे अच्छे विद्यार्थियों में गिनने लगे। मैंने जनता में भाषण देने की अपनी हॉबी को भी पुनः जाग्रत् किया और वाद-विवाद, नाटक, नाटकीय रूप से बोलने आदि में, जो समय-समय पर विभिन्न विभागों द्वारा आयोजित की जाती थीं, उसमें हिस्सा लेने लगा। जल्दी ही विश्वविद्यालय में मेरी पहचान एक सशक्त वक्ता के रूप में होने लगी।

इस बिंदु पर भाग्य ने हस्तक्षेप किया और मुझे यूनिवर्सिटी के एक सांस्कृतिक ग्रुप, जिसका नाम 'संसर्ग' था और जिसमें विभिन्न विभागों के छात्र थे, उसमें शामिल कर लिया गया। 'संसर्ग' का अर्थ है—एक साथ जुड़ना। हमारा एक मिश्रित समूह था, जिसमें गायक, नर्तक, कोरियोग्राफर (नृत्य का संयोजन करनेवाले), और यहाँ तक कि फैशन मॉडल भी थे। इस समूह के द्वारा मुझे लखनऊ से बाहर निकलने का मौका मिला और सांस्कृतिक कार्यक्रम, जो हार्ट कोर्ट, बटलर इंस्टीट्यूट, कानपुर (ऑडिसी), आई.आई.टी., कानपुर, (अंतर्रागिनी) बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, वाराणसी (स्पंदन) और अखिल भारतीय स्तर का वाद-विवाद, जो जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली द्वारा आयोजित किया गया था, में भाग लेने का मौका मिला। यह एक आँख खोल देनेवाला, क्षितिज का विस्तार करनेवाला अनुभव था। मुझे जनसभा में भाषण देने के लिए और ड्रामा में कई पुरस्कार मिले। शीघ्र ही मुझमें तत्क्षण किसी भी विषय में बोलने की योग्यता का विकास हो गया—दोनों ही भाषा शुद्ध हिंदी और अंग्रेजी में भी। साथ-ही-साथ सभी विषयों में मेरे 'ग्रेड्स' भी निरंतर बढ़ते जा रहे थे।

जब मैंने अपना ग्रेजुएशन (बी.एस-सी.) पूरा किया तो मेरे ग्रेड्स फिर हाई स्कूल के यानी 73 प्रतिशत के स्तर पर आ गए थे। उसके साथ ही विभिन्न प्रतियोगिताओं में मुझे इतनी ट्रॉफीज मिल गई थीं कि घर में उन्हें रखने के लिए जगह ही नहीं थी। ग्रेजुएशन खत्म करने के बाद अब क्या किया जाए, यह सवाल उठ खड़ा हुआ। यानी फिर निर्णय लेने का समय आ गया था।

एक बार फिर मैंने आत्म-विश्लेषण किया, यानी अपनी शक्तियों और कमजोरियों का विश्लेषण किया। मैंने पाया कि मेरी भाषाओं पर अच्छी पकड़ थी और जैव-विज्ञान विषयों में भी काफी कुछ अच्छा कमांड प्राप्त कर लिया था। मैंने यह भी पाया कि अब मैं अपने आपसे नियमित रूप से पढ़-लिख सकता था। मेरी समझ में यह आया कि इन सब मजबूत स्तंभों के सहारे मैं भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा को पास कर सकता था।

भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा एक तीन स्तरीय चुनाव प्रक्रिया होती है। एक प्रिलिमनरी (प्राथमिक) परीक्षा एक मुख्य/मेन परीक्षा और पर्सनैलिटी टेस्ट या साक्षात्कार (इंटरव्यू)। कोई भी प्रत्याशी, जो लोक सेवक (सिविल सर्वेंट) बनना चाहता है, उसे उन तीन स्तरों/बाधाओं से गुजरना पड़ता है और उसमें अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना पड़ता है (याद रखें, यह एक अखिल भारतीय परीक्षा होती है।) यह एक बहुत संघर्षमय तथा एक वर्ष लंबी प्रक्रिया होती है और वे प्रत्याशी जो जनरल/ सामान्य कैटेगरी के होते हैं (जैसे मैं था) उन्हें केवल तीन प्रयास इम्तिहान में मिलते हैं। प्रिलिमनरी टेस्ट में बैठना एक 'अटेंप्ट' माना जाता

है। यह परीक्षा सामान्य श्रेणी के कैंडीडेट्स के लिए और कठिन तथा ज्यादा प्रतियोगत्माक हो जाती है, इस तथ्य के मद्दे नजर कि स्टैट्यूट या नियमानुसार इसमें से 50 प्रतिशत सीटें/ रिक्त स्थान अनुसूचित जाति (SC), जनजाति (ST) और अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) के लिए आरक्षित रहती हैं। इस तरह से सामान्य कैंडीडेट के लिए कंपटीशन और तगड़ा हो जाता है, क्योंकि केवल आधी सीटें या रिक्त स्थान उनके लिए उपलब्ध होते हैं। इसके अलावा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए, जो केवल बी.एस-सी. करने के बाद इम्तिहान में भाग लेना चाहता था, ऐसे ही था जैसे हांगकांग की क्रिकेट टीम वर्ल्ड कप जीतने की इच्छा रखती हो! एक विद्यार्थी के रूप में भी मैं शार्क जैसी मछलियों के बीच में एक 'मिनो' या बहुत छोटी मछली जैसा था।

मुझे पता था कि इस क्षेत्र में मैं अपने देश के सबसे तेज दिमागवाले डॉक्टरों, इंजीनियरों या मैनेजमेंट प्रोफेशनल, सी.ए. (चार्टर्ड एकाउंटेंट) के साथ प्रतिस्पर्धा में रहूँगा। इस प्रतियोगिता में भाग लेनेवालों की लिस्ट उतनी ही सशक्त थी जितनी हरानेवाली थी। पर एक निर्णय ले लिया तो ले लिया। अतएव, मेरा फैसला अटल था। और मैं उस पर अड़ा रहा। पर मैं पहलेवाली गलती कि एक साल ड्रॉप कर जाऊँ, दोहराना नहीं चाहता था। अतएव, मैंने लखनऊ यूनिवर्सिटी के मैनेजमेंट विभाग की एम.बी.ए. में प्रवेश परीक्षा के लिए फॉर्म भर दिया (इसको लोग LUMBA नाम से भी जानते थे (Lucknow University Master in Business Management)। मुझे पूरी उम्मीद थी कि मैं इस टेस्ट में जरूर कामयाब रहूँगा। पर रिजल्ट आया तो बहुत जोर का धमाका था। मैं सफल कैंडीडेट्स की सूची के शीर्ष पर था। पर इसके पहले कि मुझे पता चलता, मेरी सिविल-सर्विसेज परीक्षा प्रिलिमनरी इम्तिहान की तिथि आ गई। मुझे वह अनुभव अभी भी अच्छी तरह याद है।

मैं परीक्षा भवन में जाकर बैठा गया। मुझे नर्वसनेस लग रही थी। यह पहली बार था, जब मैं इस स्तर की इतनी प्रतिष्ठा की परीक्षा में बैठ रहा था। जल्द ही प्रश्नपत्र बाँट दिए गए। यह वैकल्पिक पेपर (विषय) मेरे लिए जुओलॉजी (प्राणिशास्त्र) था। इसमें मल्टीपल वाइस वाले 120 प्रश्न थे, जिन्हें 120 मिनट में ही करना था। जैसे ही इनविजिलेटर ने संकेत दिया, मैंने पेपर की सील खोली और प्रश्नों के जवाब देने लगा। मैं यह देखकर बहुत डर गया कि पहले 2 पेज पर जो सवाल दिए थे, उसमें से किसी भी सवाल के उत्तर के प्रति मैं निश्चित नहीं था। मेरा उत्साह एकदम से ठंडा पड़ गया। 2 पृष्ठों का मतलब है—10 सवाल से ज्यादा। किसी भी परीक्षा में जहाँ एक-एक नंबर (अंक) भी बहुत महत्त्व का होता है, वहाँ पर दस सवालों का उत्तर न देने का मतलब था—युद्ध शुरु होने के

पहले ही हार जाना। पर मेरी अच्छी समझ बनी रही और जो सवाल नहीं आते थे, उन्हें छोड़कर आगे बढ़ता रहा।

तीसरे पेज पर मुझे पहली सफलता मिली। यह एक सीधा-सादा प्रश्न था, जिसको मैं सोते-सोते भी हल कर सकता था। मैंने OMR शीट में पहला काला वृत्त भरा। इससे मेरे अंदर एक खुशी की लहर दौड़ गई। मैं जल्दी-जल्दी जिन सवालों के उत्तर आते थे, उनके सामने का वृत्त काला करता गया और जो नहीं आता था, उन्हें छोड़ता गया। जल्द ही लगभग 60 मिनट में मैं अपना पहला राउंड खत्म कर चुका था। फिर मैंने पहले पेज से शुरु किया। अब तक जो मेरे पेट में हलचल हो रही थी, वह खत्म हो गई थी और मेरे हाथ भी नहीं काँप रहे थे। मेरे अचरज और खुशी का ठिकाना नहीं रहा, जब मैंने पाया कि पहले दो पेज पर जो सवाल थे, उनका मैं अपनी घबराहट के कारण उत्तर नहीं दे पा रहा था। वास्तव में वे सब बहुत सीधे-सादे प्रश्न थे। वे इस तरह से फ्रेम किए गए थे कि कठिन प्रतीत होते थे। जल्द ही समय समाप्त हो गया और मेरा अनुमान था कि मैंने 120 में से 85 प्रश्नों के उत्तर दे दिए थे (जिसमें कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण गेस भी थे, जिनकी अनुमति इस तरह के इम्तिहान में तब थी। मेरे खयाल से यह बुरा नहीं था, हालाँकि यह बहुत बढ़िया प्रदर्शन भी नहीं था। पर मैंने जितना सोचा था, उससे कहीं ज्यादा अच्छा किया था।

अगला पेपर जनरल स्टडीज का अनिवार्य पेपर था और उसमें 150 प्रश्न थे, जिन्हें केवल 120 मिनट में करना था। यह पेपर सबसे कठिन और चुनौती भरा होता है, क्योंकि इसमें दुनिया के तमाम विषयों, घटनाओं के बारे में कुछ भी पूछा जा सकता है। इसमें इतिहास से लेकर गणित तक और भूगोल से लेकर करेंट अफेयर्स तक सबकुछ शामिल होता है। इस बार मेरे पेट में कोई हलचल नहीं हो रही थी। मैंने संकेत पाते ही पेपर की सील खोली और उत्तर देना शुरु कर दिया। इस परचे में भी मैंने वही नीति अपनाई, जो प्राणी-विज्ञान के प्रथम पेपर में अपनाई थी। मैंने पेपर अच्छा किया और समय-समाप्ति की घोषणा पर मेरा अनुमान था कि 150 में से 85 प्रश्नों के मैंने सही जवाब दिए थे। पहली बार जो कैंडीडेट परीक्षा दे रहा था, उसके लिए तो यह प्रदर्शन अच्छा कहा जा सकता है, पर प्रतियोगिता में उत्तीर्ण होने के लिए यह पर्याप्त नहीं था। पर अब जो हो गया था (प्रथम स्तर पर), उसके बारे में सोचना मूर्खता थी। अतएव, मैंने मेन परीक्षा के विषयों पर ध्यान देना शुरु किया।

सिविल सर्विसेज की मेन परीक्षा में 7 क्रेडिट (सात पेपर्स होते हैं) 300 मार्क्स के। दो पेपर जनरल स्टडीज (यानी 600 अंक), 4 पेपर ऑप्शनल विषय के (300 अंक प्रति पेपर = 1,200 अंक), एक निबंध का पेपर (200 अंक)। यानी टोटल 2,000 अंक के। सारे पेपर 'सब्जेक्टिव' थे, यानी जिसमें विवरणात्मक

उत्तर लिखने पड़ते हैं। इसके साथ ही दो नॉन-क्रेडिट पेपर्स होते हैं—एक वर्नाक्युलर (भाषा) का और दूसरा अंग्रेजी का; पर उसमें क्वालीफाई करना जरूरी होता है। मैंने दिन-रात एक करके बहुत मेहनत की। मुझे याद नहीं कि मैंने कितना परिश्रम किया, या कहा जाए मैंने अपनी नाक रगड़ी और मैं विश्वास के साथ हलके कदमों से परीक्षा के फाइनल और अंतिम चरण के लिए पहुँचा और पहला पेपर दिया। पूरी परीक्षा किसी घटना के समान संपन्न हो गई। जल्द ही परिणाम भी आ गया और कैसा परिणाम था वह।

उन दिनों भारत में इंटरनेट का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। परीक्षाफल अखबार में आते थे। लखनऊ में भारत सरकार के प्रेस सूचना ब्यूरो (पी.आई.बी) का एक दफ्तर था। दिल्ली से तार/टेली-प्रिंटर द्वारा रिजल्ट मध्यरात्रि को पी.आई.बी. भेजा जाता था, जो राज्य के प्रमुख समाचारपत्रों को प्रेषित कर दिया जाता था, जो अगले दिन सुबह प्रकाशित होता था। उस निर्णायक दिन मैं मध्य रात्रि को लखनऊ स्थित पी.आई.बी. ऑफिस में पहुँच गया।

वहाँ पर बहुत गड़बड़ मची हुई थी। रिजल्ट एक दीवार पर चिपका दिया गया था और रिजल्ट देखने के लिए लड़के एक-दूसरे पर चढ़े जा रहे थे अपना-अपना रोलनंबर देखने के लिए। किसी तरह से मैं दीवार तक पहुँचने में सफल हुआ और अपना नंबर खोजने लगा। मुझे पूरी तरह याद नहीं था कि मेरा रोल नंबर क्या था, पर यह जरूर याद था कि अंत की संख्या 8 थी। डॉट-मैट्रिक्स प्रिंटर—जो रिजल्ट छापने के लिए प्रयोग किया गया था, वह जाहिर है अच्छा था; क्योंकि नंबर साफ-साफ पढ़े जा रहे थे। मैं बदहवास होकर अपना नंबर खोज रहा था और अंततोगत्वा मुझे एक संख्या ऐसी मिली, जिसके सारे अंक वही थे, जो मेरे रोल नंबर के थे—केवल एक अंतिम अंक को छोड़कर। अंतिम अंक '0' (शून्य था)। मैंने सोचा, 'जरूर यह कोई छपाई की गलती होगी।' बार-बार मैं उस अंतिम अंक को ध्यान से देख रहा था कि कहीं पड़ी रेखा नजर आ जाए और 8 में तब्दील हो जाए। पर ऐसा नहीं हुआ। जीरो (0) अंत तक जीरो ही बना रहा।

यह वास्तविकता मेरे पेट में एक घूँसे के आघात की तरह लगी। मैं परीक्षा का दूसरा चरण पास करने में फेल हो गया था। पहले चरण में सफल होने के सुखद अनुभव के बाद और पिछले तीन महीने खून-पसीना एक करने के बाद मैं फिर से उसी जगह पर पहुँच गया था।

मेरे जीवन में यह पहली बार था, जब मैंने किसी चीज के लिए इतनी कड़ी मेहनत की थी। यह केवल स्वाभाविक था कि पहला राउंड क्लियर करने के बाद और दूसरे राउंड की परीक्षा में अपने आकलन के अनुसार काफी अच्छा करने के बाद मैं तीसरे राउंड (चरण) में पहुँचने की आशा कर रहा था। वह जगह उन

विद्यार्थियों से भरी पड़ी थी, जो साक्षात्कार के लिए नहीं सफल हो पाए थे। हर सफल कैंडीडेट पर 3 कैंडीडेट ऐसे थे, जो असफल रह गए थे।

सारा दृश्य दिल तोड़ने वाला था। कुछ ऐसे प्रत्याशी थे, जिनके सारे 'अटेंप्ट' खत्म हो गए थे। कुछ ऐसे भी कैंडीडेट थे, जिनकी सहन-शक्ति खत्म हो गई थी। उनके आँसुओं से भरे चेहरे एवं झुके हुए सिर उनके टूटे सपनों की कहानी बयान कर रहे थे। ऐसे लोगों की पी.आई.बी. के बरामदे में भरमार थी। इस वातावरण में यह सोचने के लिए इस इम्तिहान में पास होना असंभव था, हमें लोगों को क्षमा कर देना चाहिए। मैं भी कुछ समय के लिए इसी प्रकार से सोचने लगा था। फिर मैंने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि 'पत्र-सूचना कार्यालय' के सामने एक टी-स्टॉल था, जो उस समय भी खुला हुआ था। मैंने यह भी देखा कि वहाँ पर कुछ प्रत्याशी, जो इम्तिहान में सफल हो गए थे, चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे और आपस में हँसी-मजाक कर रहे थे। उनका ध्यान उस हलचल पर बिलकुल नहीं था, जो उस वक्त पी.आई.बी के बरामदे में हो रही थी। उसी वक्त मन में आया कि मैं भी उन लोगों के बीच जाकर खड़ा हो जाऊँ, जो पास हो गए हैं, बजाय कि असफल लोगों के झुंड में।

टी-स्टॉल में बैठकर मैं भी चाय पीने लगा तथा उस छोटे से ग्रुप के लड़कों की बातें सुनने लगा। वे सब भी मेरी तरह युवावस्था के लड़के थे। आप उनमें से किसी भी लड़के को देखकर आप नहीं कह सकते थे कि ये सब वही लोग हैं, जो लोग आगे चलकर भारत सरकार के बड़े-बड़े अधिकारी बननेवाले हैं। जल्द ही वे लोग वहाँ से विदा हो गए। पर मैं वहाँ पर अपने विचारों में खोया बैठा रहा। मैं उस समय के बारे में सोचने लगा, जब मैंने इस परीक्षा की तैयारी शुरू की थी। मैं उस वक्त उन 3 लाख लोगों में था, जो परीक्षा में बैठे थे। प्रिलिमनरी (प्रारंभिक) परीक्षा के बाद मैंने लगभग 2,95,000 लोगों को पीछे छोड़ दिया था, जो अपने आप में कोई मामूली बात नहीं थी, यानी 1.67 प्रतिशत लोगों में था, जो इस बाधा को पार कर गए थे। प्रिलिम्स क्लीयर करने के बाद मैं उन सफल लोगों में से था, बजाय कि उन 2,95,000 लोगों के, जो छूट गए थे। यह सच है कि मेन परीक्षा में पास नहीं हो पाया था पर यह कोई विनाश नहीं था, और मेरा अभी तक का प्रदर्शन ठीक ही था और अगले प्रयास में मेन क्लीयर करने के अच्छे चांस थे। इससे मेरे अंदर जोश का एक संचार हुआ और मैंने जल्दी से चाय खत्म की तथा घर वापस लौट आया।

कुछ ही दिनों के अंदर मेरी मार्कशीट आ गई। मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऑप्शनल सब्जेक्टों (वनस्पति-शास्त्र एवं प्राणि-शास्त्र) में मुझे बहुत कम नंबर मिले हैं। मुझे विश्वास नहीं हुआ। यही विषय तो मेरे सबसे प्रिय विषय थे। किसी भी तरह यह कयास या अंदाज नहीं लगा पाया कि मुझसे

कहाँ-कहाँ गलतियाँ हुई थीं। मैंने इस विषय पर कुछ रिसर्च करने का निश्चय किया।

दूसरे दिन सुबह जाकर मैंने एक प्रतियोगिता से संबंधित पत्रिका खरीदी, जिसमें कई कैंडीडेट्स—जिन्होंने सी.एस. परीक्षा में टॉप किया था। उनके इंटरव्यू छपे थे। (या शुरू में दस स्थान हासिल किए थे।) उसमें से एक महिला ऑफिसर का भी इंटरव्यू था, जिसने उन्हीं विषयों से प्रतियोगिता में पहले दस में स्थान पाया था, जो मेरे विषय थे (प्राणि-शास्त्र और वनस्पति-विज्ञान)। उसने अपने साक्षात्कार में उन पुस्तकों का नाम भी दिया था, जिससे उसने ऑप्शनल विषय पढ़े थे। वह सूची मेरे लिए आँख खोलनेवाली थी। उन पुस्तकों का तो मैंने कभी नाम तक नहीं सुना था। मैं तुरंत ही अपने बुकसेलर के पास गया और उससे उन पुस्तकों को मँगाने के लिए कहा। उसके पास कुछ पुस्तकें तो उपलब्ध थीं। पहली पुस्तक जो उसने दी, वह 'जेनेटिक्स' पर लेखक गार्डेनर द्वारा लिखी थी। उसे पुस्तक के अंदर सरसरी तौर से झाँकने के बाद ही मुझे पता चल गया कि मेरी तैयारी में कहाँ कमी थी, क्या खामी थी।

सीधी सी बात यह थी कि मैंने सही पुस्तकों से नहीं पढ़ा था। परंतु यह तो एक बिलकुल अलग 'लीग' मैच था, जिसमें एक-से-एक दिग्गज प्रत्याशी थे। मुझे पता चल गया कि मुझे अपने घरेलू पुस्तकालय का ओवरहॉल करना और सही पुस्तकों का चयन करना है। ये पुस्तकें बहुत मँहगी थी। सो कुछ पुस्तकें, जो काफी कोर्स कवर कर लेती थीं, उन्हें तो मैंने खरीद लिया और शेष के लिए मैंने अपने यूनिवर्सिटी प्रोफेसरों से प्रार्थना की कि वे मुझे विभागीय लाइब्रेरी का प्रयोग करने की अनुमति दें—और उन्होंने यह अनुमति प्रदान भी कर दी। यहाँ पर वे सब पुस्तकें उपलब्ध थीं, जिनकी सूची उस महिला ने दी थी। उसके अलावा मुझे वहाँ कुछ ऐसी और पुस्तकें भी मिलीं, जिनसे मैं अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता था। मेरे शिक्षकों ने मुझे वे पुस्तकें 'इशू' करवा दीं और अब मेरे पास अध्ययन के लिए वह सब मसाला था, जिससे मैं अगली बार परीक्षा में इस्तेमाल कर सकता था। मैं नए जोश-खरोश से अगले साल की सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी में लग गया।

जिन पुस्तकों से मैं अब तक पढ़ रहा था, वे अंडर-ग्रेजुएट/बी.एस-सी. परीक्षा के लिए तो ठीक थीं। जब यह सब हो रहा था, मैं साथ ही साथ अपनी एम.बी.ए. की पढ़ाई भी कर रहा था। यह मेरे लिए दोहरी मार थी। एम.बी.ए. की पढ़ाई कोई आसान नहीं है। सामाजिक विज्ञान या ह्यूमनिटीज का कोर्स तो आसान था, पर मैथेमेटिक्स, स्टेटिस्टिक्स और एकाउंटिंग जैसे विषयों ने तो मेरा जीवन बहुत कठिन बना दिया था। मेरे पास एक ही रास्ता बचा था कि एम.बी.ए. की पढ़ाई को किसी प्रकार से सिविल सर्विसेज के साथ जोड़ूँ। मैंने पाया कि जनरल

स्टडीज पेपर के लिए मैं बहुत कुछ अपनी एम.बी.ए. की पढ़ाई से ले सकता था। मैं मैथ्स और स्टेटिस्टिक्स में कमजोर था और सामान्य-ज्ञान के पेपर में 50 अंक का एक हिस्सा केवल इसी पर होता था। अतएव, यदि मैं इन विषयों पर मेहनत करता हूँ तो स्वतः ही मेरी सिविल सर्विसेज परीक्षा में इस हिस्से में अच्छे अंक आ सकते थे।

समय उड़ जाता है, और मेरे केस में तो यह जेट की गति से भाग रहा था। मैं एम.बी.ए. की पढ़ाई में दूसरे वर्ष में अभी आधे रास्ते पर ही था कि प्रिलिमनरी परीक्षा का समय आ गया। इस बार मैंने अपने उत्तर काफी विश्वास के साथ दिए थे और मुझे विश्वास था कि इस बार भी मैं आसानी से प्रिलिम्स में निकल जाऊँगा। तुरंत ही मैंने अपने पेपर का विश्लेषण किया और पाया कि मेरा प्रदर्शन अच्छा था तथा इस चक्र को, जो दूसरी बार था, मैं आसानी से पार कर जाऊँगा। रिजल्ट ने इस बात की पुष्टि कर दी। अब बारी थी मेन परीक्षा की, जो सब परीक्षाओं से बड़ी थी। दूसरी बार मेरी मेन्स परीक्षा भी बहुत अच्छी हो गई।

जल्द ही रिजल्ट घोषित हुआ और मैं उस छोटे से ग्रुप का हिस्सा था, जो प्रेस सूचना कार्यालय के बाहर बने टी-स्टॉल पर चाय सिप कर रहा था। इस वक्त का अनुभव बड़ा सिर चकरा देनेवाला था। अब मेरा लक्ष्य मुझसे बहुत दूर नहीं था। बस अब केवल एक टेस्ट मेरे और उस महान् इंडियन सिविल सर्विसेज के बीच था। और वह टेस्ट पर्सनैलिटी टेस्ट या इंटरव्यू, जैसाकि वह आम लोगों में जाना जाता था। मैं इससे पहले कोई बहुत ज्यादा 'इंटरव्यू' (साक्षात्कार) में नहीं गया था, पर जिन इंटरव्यू में गया था, उसमें अच्छा ही किया था। इस समय तो मैं अपने घर की जमीन पर खेल रहा था।

पलक झपकते ही 24 अप्रैल, 1999 का दिन आ गया। मैं अपने अंकल की कार से संघ लोक सेवा आयोग के कार्यालय के गेट पर उतरा। यहाँ तक की यात्रा बहुत ऐतिहासिक थी। बुद्धिमान छात्रों के बीच छोटी सी मछली अब बढ़कर बड़ी सी शार्क मछली बन गई थी। 'अग्ली डकलिंग' (कुरूप बतख) अब बढ़कर पूरे डैनोंवाली बन गई थी। इंटरव्यू बहुत चुनौतीपूर्ण और अंतर्भेदी तथा कशमकशवाला था। उस जैसी किसी चीज से मेरा पहले कभी सामना नहीं हुआ था। बहुत उच्च स्तर के पाँच बुद्धिमान व्यक्तियों का एक पैनल था, जिसने मुझसे भाँति-भाँति के सवाल पूछें। उन सवालों की रेंज भारत में सूफी परंपरा से लेकर पानी की वैश्विक कमी तक थी। मेरे उत्तर भी सीधे-सटीक, ईमानदार और विश्वास से भरे थे। सदस्यों का रुख बड़ा मददगार और सुखद था। पर मैं यह भी जानता था कि वे मेरे व्यक्तित्व में खामियाँ ढूँढ़ने की कोशिश में थे। इंटरव्यू लगभग 45 मिनट तक चला। इंटरव्यू के बाद इंतजार करने के अलावा और कुछ नहीं था।

इस अंतराल में मेरे एम.बी.ए. के दूसरे साल की फाइनल परीक्षा निकट आ गई थी। मैं उसकी तैयारी में व्यस्त हो गया। इससे मुझे सिविल सर्विसेज के परिणाम के बारे में ज्यादा सोचने का मौका भी नहीं मिला और समय भी आसानी से गुजर गया।

यह एक प्रैक्टिस है कि सिविल सर्विसेज में जो कुछ लोग टॉप पर आते हैं या उच्च स्थान पाते हैं, उनका नाम अगले दिन समाचार-पत्रों में सुर्खियों में रहता है। यह महीना मई का था और अंतिम परिणाम किसी भी दिन घोषित किया जा सकता था। मैं दो-तीन रातों को लगातार प्रेस सूचना ब्यूरो के चक्कर लगाता रहा, पर वहाँ से यही जवाब मिलता था कि परिणाम अभी घोषित नहीं किए गए हैं। फिर एक रात को मैं वहाँ नहीं गया।

अगले दिन जब मैंने आदतवश अखबार उठाया तो देखा कि सिविल सर्विसेज परीक्षा में प्रथम स्थान पानेवाले का नाम व फोटो मुखपृष्ठ पर छपा था। वह फोटो मेरा नहीं था। धड़कते हुए दिल से मैंने समाचार-पत्र का अगला पृष्ठ खोला, जिसमें सफल प्रत्याशियों की पूरी सूची दी हुई थी। मेरा नाम पहले 10 में नहीं था। मेरा नाम पहले 50 में भी नहीं था। मेरा नाम पहले 100 में भी नहीं था। फिर मुझे इस कटु सत्य का आभास हुआ कि मेरा नाम सूची से ही नदारद था। मैं इस पर यकीन नहीं कर पाया। ऐसा मेरे साथ कैसे हो सकता है—दो बार लगातार! यह मेरे लिए पीड़ादायक था। इस बार मैंने बहुत बड़ी गलती कर दी थी। वह यह कि मैंने तीसरे प्रयास 'अटेंप्ट' के लिए कोई तैयारी नहीं की थी। आंशिक तौर पर यह कुछ अतिआत्मविश्वास के कारण था और थोड़ा कारण यह था कि मैं अपनी एम.बी.ए की परीक्षा के लिए पढ़ाई में जुट गया था। बहरहाल, किसी भी स्थिति में मेरे पास यह विकल्प नहीं था कि मैं सन् 1999 की सिविल सर्विसेज परीक्षा में बैठ सकूँ।

सन् 1999 बिना किसी घटना के बीत गया। इसके अलावा कि मेरे दाएँ हाथ की कलाई की हड्डी टूट गई थी। यह एक स्कूटर दुर्घटना के कारण हुआ और मेरा हाथ पूरा फ्रैक्चर हुआ था। दायाँ हाथ टूट जाने से मैं किसी भी भाँति मेन परीक्षा में कुछ लिख ही नहीं सकता था। इसलिए कुल मिलाकर शायद यह अच्छा ही हुआ कि मैंने प्रिलिम्स परीक्षा के लिए फॉर्म नहीं भरा था। ऐसा मैं विधि का विधान नहीं मानता हूँ, पर इसलिए क्योंकि मैंने प्रिलिम्स के लिए कोई तैयारी ही नहीं की थी, अतएव, यह एक पूरा नुकसान था। अंत में पूरा साल व्यर्थ गया।

पहले की तरह मैंने मार्कशीट आने पर उसका विश्लेषण किया। मैंने पाया कि मैंने पर्सनैलिटी टेस्ट में तो काफी अच्छा किया था और 300 में 190 अंक मिले थे। तथापि, मैंने लिखित परीक्षा (मेन) में उतना अच्छा नहीं किया था, जिसकी

वजह से गोता खा गया था। अतएव, लिखित और साक्षात्कार के अंक मिलाकर मैं मैरिट लिस्ट में स्थान नहीं पा सका था। और इससे भी ज्यादा चौंका देनेवाली बात यह थी कि मैं अपने ऑप्शनल विषयों की वजह से मात खा गया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि हर विषय में मेरा पहले से बेहतर प्रदर्शन हुआ था; पर वह मेरी मेहनत और पढ़ाई तथा संसाधनों के अनुकूल नहीं था। फिर से मैं वापस ड्राइंग बोर्ड पर गया था। इस बार मुझे यह समझ आ गया कि मेरे उत्तरों में ही कहीं कोई कमी है, जिसकी वजह से मैं बार-बार रह जाता था। अतः मैंने यूनिवर्सिटी में अपने प्रोफेसरों से सलाह ली। उन्होंने मुझे कुछ बहुमूल्य सुझाव दिए—

1. उन सवालों के, जिनके कई भाग या उप-प्रश्न हैं, उनके उत्तर पहले दो।
2. जैव-विज्ञान के सवालों का उत्तर देते समय उन्हें डायाग्राम/चित्र द्वारा समझाएँ, न कि विवरणात्मक रहें।
3. जब बॉटनी (वनस्पति-शास्त्र) या (प्राणि-शास्त्र) के उत्तर दे रहे हों तो उसमें स्ट्रक्चरल-फंक्शनल लिंकेज (संबंध) को साफ-साफ बतलाएँ।
4. उत्तर देने से पहले प्रश्न को अच्छी तरह समझ लें।

केवल चार सुझाव आप कह सकते हैं। पर यही मार्गदर्शन का महत्त्व है। वास्तव में केवल एक सही सुझाव भी, यदि आप उसका ठीक से पालन करें तो परिणाम आपके पक्ष में कर सकता है।

और मैं तो इतना भाग्यशाली था कि चार-चार अच्छे सुझाव मिल गए थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने अपने पढ़ाई करने का तरीका उन सुझावों के अनुसार बदल दिया।

मैंने सिविल सर्विसेज परीक्षा में तीसरा (और अंतिम) प्रयास वर्ष 2000 में किया। चूँकि मुझे एक साल का पूरा-पूरा समय मिल गया था, अतएव, मेरी तैयारी बहुत अच्छी तरह हुई थी। तथापि, इस बार मैंने तीन परीक्षाओं में बैठने का फैसला किया—संघ लोक सेवा, उत्तर प्रदेश की लोक सेवा परीक्षा और भारतीय वन सेवा (इंडियन फॉरेस्ट सर्विस)। इन तीनों परीक्षाओं का कोर्स एक ही था। भारतीय वन सेवा में कोई प्रिलिमनरी परीक्षा नहीं थी और उसमें केवल विज्ञान के स्नातक बैठ सकते थे। यह सर्विस भी अन्य लोक सेवाओं के समकक्ष थी। इसकी परीक्षा जुलाई में थी। अन्य दूसरी परीक्षाएँ सितंबर और अक्तूबर 2000 में थीं।

लिखित परीक्षा के आधार पर मुझे तीनों सेवाओं के लिए इंटरव्यू के लिए बुलाया गया। मैं इन साक्षात्कारों के बारे में कई रिम कागज काले कर सकता हूँ, जो कि अपने आप में दिलचस्प चीज होगी। पर यहाँ पर यह कहना काफी होगा कि मैंने इस बार इंटरव्यू पैनल का ज्यादा परिपक्वता और कम चिंता या तनाव से सामना किया। मैंने भारतीय लोक सेवा के तीनों प्रयास और भारतीय वन सेवा का एक चांस ले लिया था। प्रादेशिक सेवा की परीक्षा में प्रयासों की कोई सीमा नहीं थी। आई.सी.एस. का एक प्रयास और आई.एफ.एस. के दो प्रयास बचे थे।

मुझे इस वक्त तिथि तो पूरी याद नहीं, पर इतना जरूर याद है कि उस रात को क्या हुआ। मध्यरात्रि के बाद जब मैं अपने कमरे में सोने चला गया था, तभी हमारा घरेलू नौकर (जो हमारे घर में ही रहता था) भागता हुआ मेरे कमरे में आया। उसने मुझे जगाया और जोर से बोला, ''भैया, आप अफसर बन गए हैं और पापा आपको ऊपर बुला रहे हैं।''

मैं उसे इस तरह से नींद से जगाने के लिए डाँटनेवाला था कि मुझे उसके शब्दों का अर्थ समझ में आया। अगर पिताजी मुझे बुला रहे थे तो यह सच ही होगा। मैं दौड़कर ऊपर गया और पाया कि मेरे पापा का चेहरा खुशी से चमक रहा था। उन्होंने बताया कि उनके एक दोस्त ने, जिनकी बेटी ने भी आई.एफ.एस. की परीक्षा दी थी, फोन किया था कि वह और मैं दोनों ही परीक्षा में सफल हो गए हैं और मेरी ऑल इंडिया रैंक 4 थी। यह चमत्कार ही था। किसी भी अखिल भारतीय परीक्षा में पहले 10 में स्थान पाना बड़े गर्व की बात थी और बहुत महान् उपलब्धि थी। और यहाँ पर एक छोटी सी मछली (आदमी) की चौथी पोजीशन आ गई थी।

पर इससे पहले कि हम जश्न मनाते, इस समाचार की पुष्टि करना जरूरी था। अतएव मैं कार चलाकर पी.आई.बी. के ऑफिस दौड़ गया। हमेशा की तरह दीवार पर एक बेजान कागज चिपका था, जिस पर उन प्रत्याशियों के नाम घटते हुए क्रम में छपे हुए थे। मेरा नाम वहाँ पर चौथे नंबर पर मोटे-मोटे अक्षरों में छपा हुआ था। और इस बार मुझे कोई आड़ी या खड़ी रेखा की जरूरत नहीं पड़ी। मैं अंततोगत्वा भारत सरकार एक क्लास वन (प्रथम श्रेणी) अफसर बन गया था। मेरा संघर्ष खत्म हो चुका था। कुरूप बतख झील के साफ-चमकदार पानी पर अपना प्रतिबिंब देख रहा था। (क्या मैं भी हंस बन गया था?)

सिविल सर्विसेज और पी.सी.एस. रिजल्ट एक-दूसरे के बाद जल्दी ही आ गया। दोनों सेवाओं में मेरा चुनाव हो गया था। इसके बाद तो फिर जश्न मनाने का समय आ गया था। एक ही दाँव में मेरे सारे विरोधी धराशायी हो गए थे।

उनका मुँह बंद हो गया था। मुझे भी इस बात का संतोष था कि मैं जिस मंजिल पर पहुँचना चाहता था, पहुँच गया था। हाँ, सफर आसान नहीं था।

मुझे अपनी पढ़ाई को एक बहुत उच्चतर स्थिति में ले जाना पड़ा था। कभी-कभी बड़ी भ्रमात्मक स्थिति या अवसाद हो जाता था। बहुधा ऐसा लगता था कि इन बाधाओं को मैं कभी पार नहीं कर पाऊँगा। रास्ते में कई बार दिल भी टूटा। ऐसे कुछ लोग, जिन्हें मैं बहुत मान देता था, के साथ तनाव के कारण संबंध टूट गए थे। तथापि, कुछ नए लोगों के साथ नए संबंध जुड़े, जो अब भी कायम हैं। कभी-कभी ऐसा विचार आता था कि मैं यह सब छोड़ दूँ। पर ठीक इसी समय पर याद दिलाता कि मैंने एक फैसला किया था। मैं वचनबद्ध था और मुझे अपना वचन किसी भी कीमत पर पूरा करना था। मुझे पूरी ईमानदारी से कोशिश करनी थी और अपनी पूरी ताकत को अपने प्रदर्शन में बदल देना था। फेल होने का कोई विकल्प नहीं था। इसलिए सारे उपलब्ध अवसरों का सदुपयोग करना था। यदि कोई अटेंप्ट लेना था तो वह लेना ही था। यद्यपि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सारी कहानी एक ड्रामा की तरह थी, पर वह बहुत लाभान्वित करने वाली भी थी। मेरी अपनी दृष्टि में मेरी यात्रा एक कुरूप बतख (अग्ली डकलिंग) के रूप में शुरू हुई थी। किंतु एक ऐसा भी दिन आया, जब मैंने अपने प्रतिबिंब में ही एक हंस देखा।

मैं यह नहीं कहता कि मैंने जो कुछ पाया, वह उपलब्धि की पराकाष्ठा या ऊँचाई थी। वास्तव में यह एक बहुत मध्यम सा लक्ष्य था। बेशक तमाम ऐसे लोग हैं, जिन्होंने उतने ही समय में मुझसे कहीं ज्यादा बड़ा लक्ष्य पा लिया है। उदाहरण के तौर पर, सचिन तेंदुलकर को ही लीजिए, जो मुझसे केवल एक साल बड़े हैं, पर उन्होंने कल्पनातीत सफलता और प्रसिद्धि पाई है। उनकी तुलना में मेरी सफलता फीकी पड़ जाती है। पर सफलता और उपलब्धि, जिसकी मैं बात कर रहा हूँ, उसका स्वरूप वैयक्तिक या व्यक्तिगत है। याद करें, मैंने शुरुआत में ही सफलता को एक फैसले या निर्णय के रूप में परिभाषित किया था। आप तब सफल हैं, जब आप वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ पहुँचना था—यानी अपने ध्येय पर। यह एक तुलनात्मक खेल नहीं है। पर यह एक संपूर्ण खेल है। अकसर हम अपनी सफलता का मापदंड वही मानते हैं, जो दूसरे लोग हमारे लिए तय कर देते हैं। यह एक बहुत बड़ी गलती है।

सफलता एक बहुत व्यक्तिगत प्रक्रिया है। यह व्यक्तिगत निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचने के अलावा और कुछ नहीं है। मसलन हम उस किसान के बारे में बात करें, जो यह लक्ष्य लेकर चलता है कि वह पिछले साल से 10 प्रतिशत ज्यादा फसल उगाएगा। यदि वह अपने निर्णयानुसार फसल उगा लेता है तो मेरे विचार से वह उतना ही सफल व्यक्ति है, जैसे कि कोई उद्योगपति यह सोचकर चले

कि अगले पाँच वर्षों में वह 10 लाख डॉलर कमाएगा—और वह कमा लेता है। तात्पर्य यह नहीं है कि आपका लक्ष्य क्या है, पर यह है कि क्या आप जो लक्ष्य लेकर चले हैं वहाँ तक पहुँच पाए या नहीं! इस तरह इसमें सफलता की कोई डिग्री नहीं है। यह एक चलित (वैरिएबल) चीज नहीं है। यह एक स्थिर चीज है। जब तक आप अपने लक्ष्य तक पहुँच रहे हैं, सफलता आपकी है, अन्यथा नहीं है। आपका लक्ष्य कितना बड़ा (या छोटा) है, यह मायने नहीं रखता। दरअसल, यदि आप लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं तो फिर आप ऐसे लक्ष्य निर्धारित करें, जिन्हें आप अपनी मेहनत और क्षमता के बलबूते पर पा सकते हों।

'लक्ष्य' हासिल करने का अर्थ है—जो 'संभव' हो। यह सच है कि नेपोलियन ने कहा था कि 'असंभव' शब्द मूर्खों के शब्दकोश में पाया जाता है। मैं भी उनके साथ इत्तेफाक रखता हूँ। सच कहा जाए तो इस दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं है। यह केवल समय और निरंतर प्रयास करते रहने की बात है कि 'असंभव' चीजों को संभव किया जा सके। और इसीलिए मैंने 'प्राप्य' शब्द का प्रयोग किया है। किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का अर्थ है—दिए हुए समय और संसाधनों से उस लक्ष्य को हासिल कर लेना। यदि असीमित समय और संसाधनों की उपलब्धता हो तो कोई भी लक्ष्य असंभव नहीं है। पर व्यक्तिगत रूप से मनुष्य के पास सीमित समय और संसाधन होते हैं और इन दोनों गुणों के सीमित होने की वजह से कई चीजें व्यक्ति की पहुँच से दूर हो जाती हैं। अतएव, यह बिलकुल निरर्थक है कि आप ऐसे लक्ष्य निर्धारित करें, जो वास्तविकता से परे हैं और अप्राप्य हैं।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। मान लीजिए, एक नवोदित लेखक को अपने लिए एक लक्ष्य रखना है। तो उसे क्या लक्ष्य रखना चाहिए—किसी प्रख्यात प्रकाशक द्वारा उसकी पुस्तक प्रकाशित हो या उसकी पहली ही पुस्तक को 'नोबेल पुरस्कार' मिल जाए? मेरे विचार से आप सभी लोग मेरी इस बात से सहमत होंगे कि जो पहला विकल्प है, वह प्राप्य है और जो दूसरा विकल्प है, वह लगभग असंभव है। दूसरा विकल्प 'नोबेल पुरस्कार' हासिल करना प्राप्य के दायरे से बाहर है। इसे एक 'लंबी अवधि' की संभावना के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। एक लेखक, जो अपनी पुस्तक को प्रकाशित करने का लक्ष्य लेकर चलता है, उसके लिए काफी संभावना है कि उसकी पुस्तक प्रकाशित हो जाए और वह अपने इस प्रोजेक्ट में सफल हो जाए। पर एक लेखक, जो चाहे कि उसकी पहली पुस्तक को प्रकाशित होते ही 'नोबेल पुरस्कार' मिल जाए, वह अपने आपको केवल बेवकूफ बना रहा है। अतएव, यह नितांत आवश्यक है कि एक लंबी अवधि का लक्ष्य रखें और उसे छोटे-छोटे कम समय के उप-लक्ष्यों में विभाजित कर दें। यदि आप एक लेखक बनना चाहते हैं और 'नोबेल

पुरस्कार' जीतना चाहते हैं तो आप वही लक्ष्य निर्धारित कर लें। पर जब आपने ऐसा कर लिया तो आप एक ऐसी पुस्तक लिखने पर पूरे मनोयोग से ध्यान दीजिए, जिसे कोई अच्छा प्रख्यात प्रकाशक छापने के लिए राजी हो जाए।

इसके बाद आपकी अपनी छवि और स्वयं के प्रति धारणा में उन्नति होगी, विश्वास जागेगा। आप अपने को एक असफल व्यक्ति के बजाय एक सफल लेखक की तरह देखेंगे। इस शॉर्ट-टर्म गोल (लक्ष्य) की प्राप्ति के साथ आप अपने अंतिम लक्ष्य की ओर ज्यादा प्रेरित होकर, उत्साहित होकर काम करेंगे। और यहीं पर 'अग्ली-डकलिंग' यानी 'कुरूप बतख' की कहानी की सार्थकता है।

यह कहानी इस बारे में नहीं है कि आपको दुनिया कैसे देखती है, बल्कि यह कि आप स्वयं को कैसे देखते हैं। अतः स्वयं की नकारात्मक छवि ही असफलता की जननी है। यदि आप अवास्तविक या काल्पनिक लक्ष्य रखेंगे तो स्वतः असफलता की ओर अग्रसर होंगे और आपकी नकारात्मक स्वधारणा और पक्की हो जाएगी। (''हाँ, मैं किसी काम में सफल नहीं हो पाता हूँ। मेरा भाग्य ही ऐसा है।''), आप ऐसा कहेंगे और यह कहकर आप अपने भाग्य को कोसेंगे। इसी के विपरीत यदि आप छोटे-छोटे लक्ष्य निर्धारित करते हैं और उनको हासिल करते जाते हैं तो आपका आत्मविश्वास एवं स्व-छवि आपकी ही नजरों में नहीं, अपितु दुनिया की नजरों में बढ़ जाएगी। एक बार आप एक सफलता या लक्ष्य हासिल करनेवालों की श्रेणी में आ गए तो फिर आपके लिए कोई भी लक्ष्य बहुत बड़ा नहीं है। सफलता के बारे में आप एक ऐसी प्रक्रिया की तरह सोचें, जैसे आपको कई सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर की मंजिल पर पहुँचना है। जैसे ही आप एक सीढ़ी पर चढ़ते हैं, वह दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने के लिए आधार बन जाती है।

इसका मतलब यह है कि जिस क्षण आप एक लक्ष्य को हासिल कर लेते हैं, वह आपका अतीत बन जाता है और नया लक्ष्य आपको अपनी ओर खींचने लग जाता है। ज्यादा कुछ नहीं बदलता। बस यह कि आपकी अपने प्रति धारणा पहले से बेहतर होती चली जाती है। आप जैसे-जैसे ऊपर की ओर चढ़ते जाते हैं, आपकी इच्छा लक्ष्य-प्राप्ति के लिए बढ़ती जाती है और आपके उस दिशा में ठोस प्रयास भी उसी अनुपात में बढ़ते जाते हैं। आप शायद ही कभी दुनिया के सामने जाकर और चिल्लाकर यह कह पाएँ कि—'मैं हंस बन गया हूँ!' पर अंदर-ही-अंदर आप इस रूपांतरण का अनुभव कर सकेंगे। लोगों की प्रशंसा भरी निगाहें आपके विश्वास को और सुदृढ़ करेंगी। और यह पुस्तक इसी के बारे में है। आत्मविश्वास ही सारे प्रेरणाओं की पक्की नींव है और सफलता की भी।

यदि आप वाकई मैं यह अनुभव करते हैं कि आप कहावत वाली ‘कुरूप बतख’ हैं तो जरा बैठकर सोचिए और अपनी ओर गौर से देखिए। हो सकता है, आपके अंदर एक खूबसूरत ‘हंस’ हो, जो बाहर निकलकर झील के पानी में अपना प्रतिबिंब देखना चाहता हो!

Published by

Gyan Ganga

205-C Chawri Bazar, Delhi-110006

ISBN 978-93-5186-131-7

Dar Ke Aage Jeet Hai

by Gaurav Krishan Bansal

Edition

First, 2011